मूल्य : 20/-

पंजी. संख्या : 153/2016-17

वर्ष : २

जुलाई २०१७, विक्रमी सम्वत् २०७४
सृष्टि सम्वत् १९६०८५३११८, दयानन्दाब्द १९४

अंक : १३

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।।

सत्य और ज्ञान से भरपूर आर्यसमाज नोएडा का मासिक मुखपत्र

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

"सा प्रथमा संस्कृतिविश्ववारा"

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।।

ईश्वर का व्यापक ज्ञानस्वरूप पूज्य और सहज स्वभाव जानकर हम उसकी उपासना करें तथा जीवन में सदा सत्य का आचरण करें।

ऊधम सिंह
पुण्य तिथि : 13 जून

पंडित चमूपति
पुण्य तिथि : 15 जून

राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी
जन्म : 23 जून

चंद्रशेखर आजाद
जयंती : 23 जुलाई

अमींचन्द जी
पुण्यतिथि : 29 जुलाई

युग प्रवर्तक महर्षि
दयानन्द सरस्वती
(1824-1883)

आर्य वीरांगना दल शिविर के उद्घाटन के अवसर पर दीप प्रज्जवलन में उपस्थित आर्य महानुभाव।

आर्य वीरांगना शिविर में उद्बोधन देते हुए आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार एवं मंच पर उपस्थित आर्यजगत के विद्वान।

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।।

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

संरक्षक
श्री आनंद चौहान, श्री सुधीर सिंघल
श्री रविन्द्र सेठ 'प्रधान'

प्रबंध संपादक
महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी

प्रधान संपादक
आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार

व्यवस्थापक
ओमकार शास्त्री

प्रकाशक और मुद्रक
स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं प्रधान संपादक डॉ. जयेन्द्र कुमार द्वारा वत्स ऑफसेट, मुद्दा हाऊस, सी-ब्लॉक, बारात घर, चौड़ा रघुनाथपुर, सेक्टर-22, नोएडा से मुद्रित एवं आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, गौतमबुद्धनगर से प्रकाशित किया।

Title Code : UPMU-200652

घोषणा पत्र संख्या : 153/06.06/2016-17

मूल्य

एक प्रति : 20/-	वार्षिक : 250/-
पांच वर्ष : 1100/-	आजीवन : 2500/-

विदेश में वार्षिक शुल्क : 3100/-

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ
1.	संपादकीय	2
2.	मानव जीवन का उद्देश्य	3
3.	मनुस्मृति : एक अध्ययन	4-5
4.	अमर शहीदों पर विशेष...	6-10
5.	मातृभूमि का मातृत्व	11
6.	आर्य समाज का पंचम नियम...	12-13
7.	द वेद...	14-15
8.	प्रभु मिलन की राह	16-17
9.	वेद प्रार्थना	18
10.	स्वामी श्री दीक्षानंद सरस्वती...	19
11.	योग ही क्यों जीवन सार?	20-21
12.	समाचार दर्पण	22

पाठकवृंद : कृपया स्वयं समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए 'विश्ववारा संस्कृति' के आजीवन सदस्य बनकर जीवन पथ को पुष्पित, प्रफुल्लित और प्रमुदित करें। अपका चित्र पत्रिका में प्रकाशित होगा। आपके बहुमूल्य सुझावों का हम स्वागत करते हैं।

लेखकवृंद से अनुरोध है कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित हो, रचना का लेखन स्पष्ट और सुपाठ्य हो। दो प्रतियां उस रचनाकार को भेज दी जाएगी, जिनकी रचना प्रकाशित हुई है।

विज्ञापन दर

पिछला कवर पृष्ठ	:	5100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-2	:	3100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-3	:	2500 रुपये
पूरा पृष्ठ अंदर	:	1000 रुपये
आधा पृष्ठ अंदर	:	600 रुपये

'विश्ववारा संस्कृति' में सभी पद अवैतनिक हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय क्षेत्र गौतमबुद्धनगर होगा।

संपादकीय कार्यालय

आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा- 201301 गौतमबुद्धनगर, (उ.प्र.)
दूरभाष : 0120-2505731
9871798221

Web : www.aryasamajnoida.org, E-mail : info.aryasamajnoida33@gmail.com

संपादकीय...

।। ओ३म् ।।

कथनी एवं करनी की एकरूपता इंसान को महान बनाती है

वर्तमान युग में इंसान स्वार्थ के वशीभूत होकर विवेक भ्रष्ट एवं दुरात्मा होता जा रहा है। संस्कृत साहित्य में एक दार्शनिक सूक्ति है- 'मनस्येकं वचस्येकं कर्माण्येकं, मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्। यदि मनुष्य के मन में जो भाव हो वही बात उसकी वाणी में हो, जो वाणी में वही आचरण में, जो कर्म में हो ऐसा सत्य का आचरण व्यक्ति को महात्मा बना देता है। इसके विपरीत जिनके मन, वचन और कर्म में एकरूपता नहीं होती है वे मनुष्य संसार में दुरात्मा बन जाते हैं।

योग दर्शन में 'सत्यं यथार्थे वाङमनसे' जैसा देखा है, सुना है, वैसा ही मन में, वाणी में वैसा ही शरीर में आचरण होना सत्य है। सत्य की परिभाषा है 'जहां मन, वचन को विरोध नहीं, जहां कथनी, करनी में कोई भेद नहीं, जहां मन, वचन, कर्म तीनों एक है वहां सत्य है, वहीं सत्य का आचरण है। व्यक्ति वही महात्मा होता है जिसके मन में डर न हो, कपट न हो, ईर्ष्या न हो।

जो अपनी बात पर अडिग रहता हो, जो बात का, वचन का धनी हो, जो अपने संकल्प, प्रतिज्ञा पर ठहरता हो, टिकता हो, विषम परिस्थितियों में भी सत्य पथ पर चलता हो, भोग एवं स्वार्थ के वशीभूत होकर जो कभी कर्तव्य पथ से, सत्य से विमुख नहीं होता वह व्यक्ति महात्मा होता है। इसके विपरीत मन, वचन, कर्म में भेद रखने वाला दुरात्मा व्यक्ति पतन की गहरी खाई में गिरता है। शास्त्र की दृष्टि में श्रेष्ठ पुरुष वही होते हैं जो आत्महन्ता आसुरी स्वभाव वाले नहीं होते, जो आत्मा के विरुद्ध आचरण करने वाले अपने प्राण पोषण में तत्पर अविद्यादि दोषों से युक्त पापकर्मी होते हैं वे ही असुर एवं दुरात्मा होते हैं। महर्षि दयानंद सरस्वती ने वेदभाषा में स्पष्ट लिखा है- वे ही मनुष्य असुर, राक्षस, दैत्य तथा पिशाच आदि है जो आत्माएं जानते हैं कुछ और बोलते, करते कुछ और हैं वे कभी अविद्या से पार हो आनंद को नहीं प्राप्त हो सकते और जो आत्मा, मन, वाणी और कर्म से निष्कपट एक सा आचरण करते हैं वे ही देव, आर्य, सौभाग्यवान, सब जगत को पवित्र करते हुए इस लोक और परलोक में अतुल सुख भोगते हैं। काश! संसार के लोग ऋषि दयानंद के इस संदेश को समझकर छल, कपट आदि छोड़कर सच्चे अर्थो में महात्मा बनकर जीवन सफल करें।

शास्त्रों का यह संदेश सदा स्मरण रखे- 'यथा चिन्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया, चित्तं वाचि क्रियायां च साधुनामेकरूपता।। अच्छे लोगों के मन में जो बात होती है, वे वही बोलते हैं और ऐसे लोग जो बोलते हैं, वही करते हैं सज्जन पुरुषो के मन, वचन और कर्म में एकरूपता होती है।

■ आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार

मनुष्य के मन में जो भाव हो वही बात उसकी वाणी में हो तो बाकी में वही आचरण में कर्म में हो ऐसा सत्य का आचरण व्यक्ति को महात्मा बना देता है। इसके विपरीत जिनके मन वचन और कर्म में एकरूपता नहीं होती है वे मनुष्य संसार में दुरात्मा बन जाते हैं। योग दर्शन में 'सत्यं यथार्थे वाङमनसे' जैसा देखा है, सुना है, वैसा ही मन में, वाणी में वैसा ही शरीर में आचरण होना सत्य है। सत्य की परिभाषा है 'जहां मन वचन को विरोध नहीं, जहां कथनी करनी में कोई भेद नहीं, जहां मन, वचन, कर्म तीनों एक है वहां सत्य है, वहीं सत्य का आचरण है। व्यक्ति वही महात्मा होता है जिसके मन में डर न हो, कपट न हो, ईर्ष्या न हो। जो अपनी बात पर अडिग रहता हो, जो बात का वचन का धनी हो, जो अपने संकल्प प्रतिज्ञा पर ठहरता हो, टिकता हो, विषम परिस्थितियों में भी सत्य पथ पर चलता हो, भोग एवं स्वार्थी के वशीभूत होकर जो कभी कर्तव्य पथ से, सत्य से विमुख नहीं होता वह व्यक्ति महात्मा होता है।

मानव जीवन का उद्देश्य

प्रबंध संपादक
महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी

सत्संग, आध्यात्मिक संगोष्ठियां ऐसे जिज्ञासुओं के लिये विकल्प स्वरूप हैं। इसलिए सत्संगो, अध्यात्म सभाओं में हम शिष्य बनकर पहुंचे, समित्पाणि होकर पहुंचे अर्थात जिज्ञासु होकर पहुंचे। समित्पाणि होना सर्मपण और सेवा का प्रतीक है। तीन समिधाएं- तन-मन व आत्म सर्मपण ये तीन समिधाएं हैं जिन्हें प्रतीक स्वरूप शिष्य गुरु को समर्पित करता है।

हमारे मन में कई प्रकार के विचार जीवन को लेकर उठते हैं, जीवन क्या है? इसका उद्देश्य क्या है? अंतिम सार क्या है? जो जीवन मिला है किसलिए मिला है। सबसे पहले तो कहें कि जन्म और मृत्यु के काल को जीवन कहा जाता है। इस काल में हमें यह जानना आवश्यक है कि वह परमेश्वर कौन है, कैसा है व क्या करता है? उसके नाम पर बड़ी अनभिज्ञताएं हैं, परमात्मा ने संसार क्यों बनाया हैं? मनुष्य को जीवन क्यों दिया, बहुत सारे प्रश्न उठते हैं।

परमात्मा को लेकर संसार में बहुत से विवाद हैं? प्रश्न बहुत हो सकते हैं, अन्तर भी बहुत हो सकते हैं, पर अध्यात्म के जगत में वे ही प्रवेश कर पाते हैं, जो परि प्रश्न हो जाते हैं। परि प्रश्न के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है, समझा जा सकता है। परि प्रश्न नाम है जिज्ञासा का अर्थात् जानने की तीव्र इच्छा! श्रद्धा से परिपूर्ण जिज्ञासा का नाम है परि प्रश्न कि किससे पूछें, किससे परि प्रश्न करें, किससे जिज्ञासा करें? क्योंकि प्रारम्भ पूछना ही होता है और जिससे पूछते हैं, जिज्ञासा करते हैं, उसे ही गुरु कहा गया है, उसे ही आचार्य कहा गया है। पर वह गुरु, वह आचार्य तत्वदर्शी हो, श्रोत्रिय हो, ब्रह्मनिष्ठ हो। तद् विज्ञानार्थं स गुरुं एवं अहभगच्छे समित्पाणि-श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् -मुण्डकोपनिषद 1.२.12 कहा भी है, अर्थात्- उसे जानने के लिए, वह जिज्ञासु श्रोता शिष्य बनकर अपने हाथ में समिधा लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाय।

सत्संग, आध्यात्मिक संगोष्ठियां ऐसे जिज्ञासुओं के लिये विकल्प स्वरूप हैं। इसलिए सत्संगों, अध्यात्म सभाओं में हम शिष्य बनकर पहुंचें, समित्पाणि होकर पहुंचे अर्थात जिज्ञासु होकर पहुंचे। समित्पाणि होना सर्मपण और सेवा का प्रतीक है। तीन समिधाएं- तन-मन व आत्म समर्पण ये तीन समिधाएं हैं जिन्हें प्रतीक स्वरूप शिष्य गुरु को समर्पित करता है। आत्म शिष्य का श्रद्धावान, तत्परायण और संयमी होना आवश्यक है और योगेश्वर श्रीकृष्ण गीता में भी लिखते हैं- श्रद्धावान, लभते ज्ञानं तत्पर: सतेन्द्रिय: गीता- 4-39

हम तब उसे जान पाते हैं, जो देवों का देव है, जो वसुओं का वसु है, जो अदभुत मित्र है, जो सच्चिदानन्द स्वरुप परमात्मा है। ये जिन्दगी उसी की है, जो प्रभु का हो गया...। यदि हम स्वयं पात्र बनकर पहुचेंगे तो उसे प्राप्त किए बिना वापस नहीं लोटेंगे, उसे जाने बिना नहीं रहेगें क्योंकि जीवन का सार यही है हम उस परमपिता परमात्मा को पालें और वह हमें मिल जाए। यही मानव जीवन का उद्देश्य है।

ईश्वर की सच्ची प्रार्थना से हमारा अंर्तमन खुश होता है। ईश्वर से प्रीति लगाना ही अंतिम सत्य है। क्योंकि मोक्ष पाने का एक मार्ग यही है। ब्रह्म की प्राप्ति ही जीव का परमलक्ष्य है। ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण है उसी में जीव आनन्दपूर्वक गति से सर्वत्र विचरता है तो उस स्थिति को मोक्ष कहते हैं। जब शुद्ध मन युक्त पांच ज्ञानेन्द्रियं जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का स्थिर निश्चय होता है, उसको मोक्ष कहते हैं।

मोक्ष प्राप्त करने के लिए जीवात्मा अपने शुभ कर्मों द्वारा ऐश्वर्य के संचय के लिए मनुष्य योनी में आता है। सत्यभाषण, परोपकार, सत्यज्ञान, उपासना द्वारा मानसिक रूप से परमात्मा के समीप रहना, उसी से प्रकाश और प्रेरणा लेकर सब कार्य करना आदि कार्यों से जीव मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक पूंजी संग्रह करने में समर्थ होकर अपने चरम और परम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो जाता है। परमेश्वर की प्राप्ति से जीव को जो असीम आनन्द प्राप्त होता है, वही सचमुच स्वर्ग है। मोक्ष की स्थिति में ही यह स्वर्ग जीव को प्राप्त होता है। मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि वह धर्म ज्ञान, विद्या द्वारा अपने आप आत्मा को जाने, पुन: परमात्मा की प्रेरणा प्रकाश में रहते रहते और तद्नुसार आचरण व्यवहार करने से निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति होगी।

शुभ कर्मों की पूंजी ही हमें मोक्ष प्राप्त करा सकती है। आत्मा और परमात्मा के मिलन में किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं है। विवेक से भोगों में छिपे दु:ख को जानकर, उन से वैराग्य, वैराग्य से मन की एकाग्रता, एकाग्रता से सत्य, सत्य से समाधि, समाधि से ईश्वर का साक्षात्कार, ईश्वर दर्शन से अज्ञान-अविद्या का नाश, जिससे दु:खों की समाप्ति फिर पूर्ण स्थाई सुख व मुक्ति की प्राप्ति होती है।

केवल यही नहीं दीन-दु:खियों की समस्या जानकर उनकी दु:ख भरी आवाज सुनना, प्यासे को पानी पिलाना, रोगी को दवा देना, भूखे को खाना देना, अपंगों की सहायता आदि ऐसे कार्य है जिन्हें करने पर अर्न्तात्मा को आनन्द की अनुभूति होती है। यही तो है परमात्मा के दर्शन होना। जिस प्रकार हम हवा को नहीं देख सकते उसे केवल अनुभव कर सकते हैं जबकि वह हमारे पास विद्यमान हैं उसी प्रकार ईश्वर भी सर्वत्र विद्यमान है, परन्तु उसका साक्षात्कार अपने हृदय अथवा अपने मन के अन्तर्गत ही कर सकते हैं बशर्ते हम उसे सच्चे मन से पुकारें। प्रभु के दर्शनाभिलाषी के लिए आवश्यक है कि वह स्वयं को भी जान ले कि मैं कौन हूं? इस संसार में क्यूं आया हूं? अधिकतर व्यक्ति अपने इस शरीर को ही मैं समझते हैं तथा खाओ पियो मौज उड़ाओ को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं। पुनर्जन्म में विश्वास न रखने के कारण ऐसे व्यक्ति दिन रात सांसारिक भोगों को प्राप्त करने व भोगने में ही जीवन नष्ट कर रहे हैं उन्हें यह ज्ञान नहीं है कि एक दिन इन सबको यहीं छोड़कर संसार से विदा भी होना पड़ेगा व वर्तमान जीवन के कर्मानुसार ही अगला जन्म लेना पड़ेगा।

मनुस्मृति : एक अध्ययन

डॉ. भवानी लाल भारतीय

ऋषि मनु और वेद : आर्यों के धार्मिक, दार्शनिक शास्त्रों में वेदों को सर्वोपरि प्रतिष्ठा प्राप्त है। वेदों को सर्वाधिक प्रामाणिक तथा स्वतः प्रमाण मानने की परम्परा अत्यंत प्राचीन है और अनादि काल से इस मान्यता को भारत के सभी आचार्य, दार्शनिक, सम्प्रदाय-प्रवर्तक तथा धर्मोपदेशक स्वीकार करते आए हैं। मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक ने इस ग्रंथ के द्वितीय अध्याय के प्रथम श्लोक (विद्वद्भिः सेवितः सभ्दिः) की व्याख्या में हारीत नामक एक पुरातन आचार्य का एक वचन उद्धृत किया है- 'अथातो धर्म व्याख्यास्यामः श्रुतिप्रमाण को धर्मः।' अर्थात् यदि हम धर्म की व्याख्या करें तो उत्तर में कहना है कि जो कर्त्तव्य वेद-सम्मत हैं, जिनमें श्रुति का प्रमाण है, वही धर्म है। भागवत ने इसी तथ्य को इस प्रकार रेखांकित किया है- **वेद प्राणिहितो धर्मः ह्यधर्मस्तद् विपर्ययः।**

जो वेद-प्रतिपादित है वही धर्म है और उसके विपरीत जो है उसे अधर्म कहना चाहिए।

वेदों को धर्मालोचना तथा कर्त्तव्य-निर्धारण में जो सर्वोपरि महत्व प्राप्त हुआ है वह मात्र आस्था, श्रद्धा या विश्वास की ही बात रही हो, ऐसा नहीं है। इसे युक्ति तथा कर्म की कसौटी पर भी कसा गया है। ऋषि दयानंद जैसे वेदों के प्रति अनन्य श्रद्धा-भाव रखने वाले आचार्य ने वेदों की शिक्षाओं को सार्वभौम, सार्वकालिक और सार्वजनीन पाया, साथ ही अपने विस्तृत वेदोनुशीलन के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वेदों में जो कुछ कहा गया है वह सृष्टिक्रम तथा विज्ञान से सर्वथा अनुमोदित है तथा वेद प्रतिपादित शिक्षाएं किसी देश, काल या वर्ग-विशेष के लिए नहीं हैं। किंतु आर्यों के शास्त्रों का क्रम वेदों पर ही समाप्त नहीं होता। वेदों की मूल शिक्षाओं का आधार लेकर, उनकी व्याख्या रूप अथवा उन्हीं का उपबृंहण करते हुए परवर्ती ऋषि-मुनियों ने अनेक ग्रंथ लिखे। वैदिक साहित्य के अंतर्गत संहिताओं से भिन्न ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् संज्ञक ग्रंथों की परिगणना होती है, किंतु वेदाधारित मनुष्यों के कर्तव्य-निर्धारण, उनकी सामाजिक व्यवस्थाओं, उनके पारिवारिक संबंधों तथा उनकी राज्यव्यवस्था जैसे लौकिक विषयों पर विस्तृत चर्चा जिन ग्रंथों में हुई, वे स्मृति ग्रंथ कहलाते हैं। शास्त्र प्रमाण विचार में वेदों के तुरंत बाद ही स्मृतियों की चर्चा होती है और श्रुति के पश्चात् स्मृतियों को प्रामाणिक माना जाता है।

स्मृतियों में बताए गए कर्त्तव्यों और आचरणों को स्मार्त धर्म तथा स्मार्त कर्म के नाम से अभिहित किया जाता है। परंतु एक बात ध्यान में रखने की है कि स्मृति द्वारा कथित कर्त्तव्य कर्म तभी तक स्वीकार्य होंगे, यदि वे वेदों से समर्थन या अनुमोदन प्राप्त कर सकेंगे। स्मृतियों को वेदानुमोदित होना अनिवार्य जाना गया है।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। -२/१३

इस मनु वाक्य की व्याख्या करते हुए कुल्लूक ने स्पष्ट लिखा है- 'धर्म च ज्ञातुमिच्छतां प्रकृष्टं प्रमाणं श्रुतिः प्रकरणबांधनेन च श्रुतिस्मृतिविरोधे स्मृत्यर्थो नादरणीय इति भावः।' अतएव जाबालः श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी। अविरोधे सदा कार्यं कार्त् वैदिकवत्सदा। अर्थात् धर्म को जानने

वेदों को धर्मालोचना तथा कर्त्तव्य-निर्धारण में जो सर्वोपरि महत्व प्राप्त हुआ है वह मात्र आस्था, श्रद्धा या विश्वास की ही बात रही हो, ऐसा नहीं है। इसे युक्ति तथा कर्म की कसौटी पर भी कसा गया है। ऋषि दयानंद जैसे वेदों के प्रति अनन्य श्रद्धा-भाव रखने वाले आचार्य ने वेदों की शिक्षाओं को सार्वभौम, सार्वकालिक और सार्वजनीन पाया, साथ ही अपने विस्तृत वेदोनुशीलन के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वेदों में जो कुछ कहा गया है वह सृष्टिक्रम तथा विज्ञान से सर्वथा अनुमोदित है तथा वेद प्रतिपादित शिक्षाएं किसी देश, काल या वर्ग-विशेष के लिए नहीं हैं। किंतु आर्यों के शास्त्रों का क्रम वेदों पर ही समाप्त नहीं होता। वेदों की मूल शिक्षाओं का आधार लेकर, उनकी व्याख्या रूप अथवा उन्हीं का उपबृंहण करते हुए परवर्ती ऋषि-मुनियों ने अनेक ग्रंथ लिखे। वैदिक साहित्य के अंतर्गत संहिताओं से भिन्न ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् संज्ञक ग्रंथों की परिगणना होता है, किंतु वेदाधारित मनुष्यों के कर्तव्य-निर्धारण, उनकी सामाजिक व्यवस्थाओं, उनके पारिवारिक संबंधो तथा उनकी राज्यव्यवस्था जैसे लौकिक विषयों पर विस्तृत चर्चा जिन ग्रंथों में हुई, वे स्मृति ग्रंथ कहलाते हैं। शास्त्र प्रमाण विचार में वेदो के तुरंत बाद ही स्मृतियों की चर्चा होती है और श्रुति के पश्चात् स्मृतियों को प्रामाणिक माना जाता है। स्मृतियों में बताए गए कर्त्तव्यों और आचरणों को स्मार्त धर्म तथा स्मार्त कर्म के नाम से अभिहित किया जाता है।

वालों के लिए श्रेष्ठ प्रमाण तो वेद ही है। जहां श्रुति और स्मृति का विरोध प्रतीत हो, वहां स्मृति के अर्थ को स्वीकार नहीं किया जाता। किंतु जहां अविरोध हो वहां स्मृति कर्मों को भी श्रौत कत्तव्यों की भांति पालना चाहिए। इसी प्रसंग में कुल्लूक ने भविष्य युतुपा तथा जैमिनी कृत मीमांसा दर्शन को उद्धृत कर यह स्पष्ट कर दिया है कि श्रुति के विरुद्ध होने पर स्मृति के वाक्य अनपेक्ष्य (अनावश्यक) अप्रमाण तथा अनादरणीय हो जाते हैं- 'श्रुतिविरोधे स्मृतिवाक्य मनपेक्ष्य प्रमाणमनादरणीयम्।'

श्रति और स्मृति के इस प्रमाण क्रम को महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में एक उपमा द्वारा स्पष्ट किया। सम्राट दिलीप नंदिनी गाय के पीछे-पीछे इस प्रकार चलते हैं, जैसे स्मृतियां श्रुति का अनुगयन करती हैं।

यों तो स्मृति ग्रंथों की संख्या बहुत अधिक है। प्रायः २८ स्मृतियों में राजर्षि मनु रचित मनुस्मिृति का ही सर्वाधिक आदर है। यही स्मृति सर्वमान्य, सर्वस्वीकार्य तथा निखिल आर्य मतावलंबियों के लिए आदर की पात्र हैं। कुल्लूक भट्ट ने अपनी टीका के आरम्भ में मनुस्मृति के महत्व का प्रमाण देते हैं- 'मनुर्वै यत्किंचिदवदत्तद् भेषजं भेषजतायाः।' अर्थात् मनु ने जो कुछ कहा वह औषधियों का भी परमौषध है। उन्होंने वृतायति नामक एक अन्य आचार्य को उद्धृत किया-

वेदार्थोपनिबद्धत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्। मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते॥

वेदार्थ को ही निरूपित करने के कारण मनुस्मृति को समस्त साहित्य में प्रधानता प्राप्त है। जो अन्य स्मृतियां मनु के विपरीत हैं, वे प्रशंसा की पात्र नहीं हैं। महाभारत में भी स्पष्ट कहा गया है कि मनु प्रोक्त धर्म को केवल हेतुवाद (तर्कवाद) के आधार पर अवहेलना नहीं की जा सकती। इन्हीं शास्त्राधारित प्रमाणों को स्वीकार करते हुए ऋषि दयानंद ने नवीन काल में लिखी अन्य सभी स्मृतियों को अप्रमाण मानते हुए राजर्षि मनु की उसी स्मृति को एकमेव प्रमाण माना जो सनातन काल से आर्य धर्मावलंबियों के इहलौकिक और पारलौकिक कर्त्तव्यों को विधान करने के साथ-साथ आपद्धर्मों तथा ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजाराम मोहनराय की मनु विषयक सम्मति भी इसी मत की पोषक है। सती प्रथा को शास्त्र विरुद्ध सिद्ध करते हुए राममोहन राय ने स्पष्ट किया कि अग्डिरा तथा उन्हीं की श्रेणी के अन्य अवांतर कालीन स्मृतिकारों द्वारा बताये गये नियम (विधान) स्वीकार नहीं किए जा सकते, क्योंकि वे मनु की आज्ञाओं के प्रतिकूल हैं। जैसा कि वेद (अथवा ब्राह्मणग्रंथ) कहते हैं- जो कुछ मनु ने कहा है वह औषधि समान है। बृहस्पति भी यही कहते हैं कि जो मनु के विपरीत विधियां हैं, वे स्वीकार करने के योग्य नहीं हैं।

राममोहन राय ने तो यहां तक कहा कि मनु के विपरीत एकाधिक स्मृतिकार भी हों तो उनका कथन मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि मनुस्मृति में जो कुछ कहा गया है वह तो वेदों का निचोड़ ही है। अतः मन्वर्थ के विपरीत बात कहने वाली स्मृतियां स्वतः ही वेद विरुद्ध सिद्ध हो जाती हैं। निष्कर्षतः उन्हें प्रमाण स्वीकार नहीं किया जा सकता-

'Whatever law inconsistent with the code of Manu. which is the Substance of the Veda isreally inconsistent with the Veda itself. and therefore inadmissible.' -Second conference on the practice of burning widows avile.

ईस्ट इंडिया कंपनी की सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश संस्कृतविद् सर विलियम जोंस ने मनुस्मृति के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में इस ग्रंथ के अनेक गुणों का उल्लेख करते हुए लिखा-A spirit of subline devotion. of behevolence to mankind. and the amiable tenderness to all sentient creatures pervades the whole work; the style of it has a certain austere majesty that sounds like the language of legislation and extorts a respectful awe; the sentiments of independence on all being but God, and the admonitions even to the kings are truely noble. IIIustitutes of Hindu Law the ordinances of Manu according to the gloss of Kulluka.Verbally translated from the original Sanskrit with a pretace. P.S. 1884 में प्रकाशित।

अर्थात् 'इस ग्रंथ (मनुस्मृति) में गंभीर श्रद्धा के भाव हैं, मानवता के प्रति उदार भाव हैं इसमें प्राणधारियों के प्रति सौम्यता युक्त संवेदनशीलता सर्वत्र पाई जाती है। इसकी शैली सादगी युक्त गंभीर है जो विधि-विधान की भाषा लिए है, जो पाठकों में आदरयुक्त भय तथा विस्मय भर देती है, जो ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सभी निर्भीक तथा स्वतंत्र रहने के भाव जागरित करती है तथा इसमें सम्राटों तक के गलत कामों के लिए भर्त्सना के विचार आए हैं। ये सभी विषय निश्चय की श्रेष्ठ हैं।'

सम्भवतः मनु के विधान के लिए ऐसे प्रशंसापूर्ण उद्गार शायद ही कहीं प्रकट किए गए हों। जब मनु की सम्पूर्ण कथा का ताना-बाना ही वेदों के आधार पर निर्मित हुआ है, तो हमें देखना होगा कि खुद वेदों के बारे में मनुस्मृति क्या कहती है।

हम अपने अत्यल्प शास्त्र ज्ञान के आधार पर कह सकते हैं कि वेदों के प्रति जितना श्रद्धाभाव मनु ने प्रकट किया है, उतना प्राचीन एवं अर्वाचीन किसी शास्त्रकार ने शायद ही किया हो। मनु के वेद-विषयक मंतव्य केवल श्रद्धा विगलित ही थे यह कहना भी उचित नहीं है। उन्होंने वेदों को सर्वथा भगवदीय आदेशों के अनुकूल, प्रकृति एवं सृष्टि नियमों से समन्वित तथा तर्काधारित जानकर ही अपने इस धर्मशास्त्र की वेदानुकूल रचना की थी।

अमर शहीद ऊधम सिंह

पुण्यतिथि : 13 जून पर शत्-शत् नमन

पटियाला रियासत के एक छोटे से ग्राम सुनाम में टहल सिंह रहा करते थे। वहीं वे रेलवे में काम करते थे। उनके यहां 26 दिसम्बर, 1899 में एक बालक का जन्म हुआ। बाल सुलभ चंचलता के कारण उनका 'ऊधम सिंह' नाम रख दिया गया। ऊधम सिंह के एक ही छोटा भाई था। दोनों भाई सुखपूर्वक रह रहे थे कि एकाएक उनकी माता जी चल बसीं। पिता टहल सिंह दोनों बच्चों को साथ लेकर अमृतसर आ गए। यहां पिताजी भी शीघ्र ही परलोक सिधार गये। ऊधम सिंह अपने अनुज के साथ अनाथालय की शरण में चले गए। परिवार का अन्य कोई सदस्य नहीं था। दुर्भाग्य ने यहां भी पीछा नहीं छोड़ा। अनुज भी साथ छोड़कर परलोकवासी हो गया। अकेले बचे ऊधम सिंह। अनाथालय में रहकर मैट्रिक पास किया और वहीं कुछ दस्तकारी भी सीखी।

13 अप्रैल 1919 को बैशाखी के मेले में जनरल ओ. डायर ने निहत्थी व निरीह जनता पर जलियांवाला बाग में अंधाधुंध गोली चलवाई। बताया जाता है कि 15-20 मिनट के इस हत्याकांड में 1600 राउंड गोलियां चलाई गयी थीं। जलियांवाला बाग की धरती लाल हो गई थी। हजारों की संख्या में हुई मौतों को देख युवा ऊधम सिंह की रगों में अंग्रेजों के विरुद्ध बदले की ज्वाला धधक उठी।

ब्रिटिश शासन के प्रति गहरी नफरत पैदा हो गयी। बीस वर्षीय युवक ऊधम सिंह ने इस हत्याकांड का बदला लेने के लिए उसी समय प्रण किया। देश में जलियांवाला बाग हत्याकांड से पीड़ा और शोक के बादल चारों ओर छा गए। जनरल डायर कई वर्ष बीमार रहकर 23 जुलाई 1927 को अपनी मौत मर गया। जबकि माइकेल ओ. डायर 13 मार्च 1940 को कैक्सटन हाल, लंदन में अपनी बहादुरी के गीत गाने आया था। ऊधम सिंह किसी तरह इंग्लैंड पहुंचकर अनेक वर्षों से इसी ताक में थे कि कैसे माइकेल ओ. डायर के खून से जलियांवाला बाग का बदला लिया जाए? ऊधम सिंह ने भाषण के अंत में चार बजकर तीस मिनट पर दो गोलियां दागी जिससे माइकेल ओ. डायर वही ढेर हो गया। ऊधम सिंह चिल्लाये। 'जलियांवाला बाग कांड का बदला चुका दिया।' ऊधम सिंह को ब्रिटेन की जेल के सींखचों में डाल दिया गया। अनेक यातनाएं झेलनी पड़ीं।

अंत में 13 जून 1940 को उन्हें फांसी की सजा दे गई। भारत माता के वीर सपूत ऊधम सिंह ने फांसी पर झूलने से पहले कहा था- 'मैंने जलियांवाला बाग हत्याकांड अपनी आंखों से देखा था। माइकेल ओ. डायर का नृशंसतापूर्ण अत्याचार एवं भयानक दमन और गोलीकांड मेरे अंतस में अभी तक न निकल सका। उसी दिन की गई प्रतिज्ञा अब मैं पूरी कर चुका हूं।' अंग्रेजों से इस देश को आजाद कराने में सामान्य परिवार में जन्म लेने वाले ऊधम सिंह के हृदय में राष्ट्रीय भावनाओं का समुद्र हिलोरे ले रहा है। ऐसे देशभक्त ऊधम सिंह का बलिदान भारत के जन-मानस को सदैव राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा देता रहेगा।

OO

पंडित चमूपति

पुण्यतिथि : 15 जून पर शत्-शत् नमन

पंडित चमूपति का जन्म 15 फरवरी, 1863 ई. में बहावलपुर (अब पाकिस्तान) में हुआ था। इनके पिता का नाम मेहता बसंदा राम था। बालक का नाम उन्होंने चम्पतराय रखा था। पं. चमूपति जी ने मिडिल परीक्षा में अपनी रियासत में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया था। मैट्रिक की परीक्षा पास करके वे बहावलपुर के सादिक ईजर्टन कॉलेज में प्रविष्ट हो गए। कॉलेज में उन्होंने उर्दू काव्य लिखना आरम्भ कर दिया। सर्वप्रथम उन्होंने सिखों के धर्मग्रंथ 'जपजी' का उर्दू में काव्यानुवाद किया। एमए की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर आप उसी रियासत के एक मिडिल स्कूल में अध्यापक नियुक्त हो गये।

मेहता चम्पतराय के विचारों में एमए करने के उपरांत भी स्थिरता नहीं आ पाई थी। प्रारंभ में वे सिख धर्म की ओर आकृष्ट हुए तो फिर शनैः शनैः नास्तिक बन गये। इसी बीच उन्हें स्वामी दयानंद के ग्रंथों के अध्ययन का सुयोग सुलभ हुआ। परिणाम स्वरूप ईश्वर के प्रति उनकी आस्था तो जम गई किंतु वे शंकर वेदांत की ओर झुकने लगे। यद्यपि वेदांत पर भी उनकी आस्था अधिक दिन तक टिकी नहीं रह पाई किंतु मूर्ति पूजा की ओर उनका झुकाव बढ़ गया। शनैः शनैः जब उनका अध्ययन परिपक्व होता गया तो वे आर्य समाज के सिद्धांतों को स्वीकार करने लगे। उन्हें वैदिक धर्म के प्रति आस्था हो गई। आर्य समाज में प्रविष्ट होने पर वे चम्पत राय से चमूपति बन गये। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्य संचालन हेतु पं. चमूपति जी लाहौर आ गये। सभा द्वारा

संचालित दयानंद सेवा सदन के सदस्य बनकर उन्होंने अपना सारा जीवन वैदिक धर्म के प्रचार में अर्पित कर दिया। गुरुकुल कांगड़ी को भी पंडित चमूपति की सेवाओं का लाभ प्राप्त हुआ था। इस गुरुकुल के वे उपाध्यक्ष, मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य के पदों को सुशोभित करते रहे। 15 जून 1939 को उनका स्वर्गवास हो गया। पं. चमूपति जी ने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। वेदों का भाष्य किया। वेद की रचना की। पं. चमूपति असाधारण कोटि के विद्वान थे। हिंदू, उर्दू, और अंग्रेजी इन तीनों विषयों पर उनका समान अधिकार था।

अमर शहीद राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी

जन्म : 23 जून पर शत्-शत् नमन

आजकल के कुछ नवयुवक लूटपाट और हिंसक काम करके मौज-मस्ती की जिंदगी बिताने में प्रवृत्त हैं, जिसकी समाज निंदा करता है, किंतु काकोरी ट्रेन डकैती का उद्देश्य विदेशी सरकार के जुल्मों के खिलाफ एक नियोजित युद्ध करना था जिसके लिए वे हथियार खरीदना चाहते थे। वे इसके लिए जनता को परेशान करके उन्हें लूटने की बजाय केवल सरकारी खजाना लूटना चाहते थे। काकोरी केस के क्रांतिकारियों के नायक रामप्रसाद बिस्मिल ने इसके लिए कड़े निर्देश दिये थे।

राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी (जन्म 23 जून, 1901 बलिदान 17 दिसंबर, 1927) संभवतः सबसे कम अवस्था के काकोरी केस के छब्बीस वर्षीय शहीद थे। उनके पिता क्षितिज मोहन और माता बसंत कुमारी थीं। एक सामान्य आर्थिक स्थिति के परिवार में रहकर उन्होंने स्नातक परीक्षा पास की किंतु परिवार बसाने और चलाने की बजाय शचीन्द्र नाथ सान्यास की प्रेरणा से देश स्वातंत्रय के लिए कांटों भरे रास्ते और जान जोखिम का खतरा हर क्षण होने का निश्चय किया। वे गर्म दल के सदस्यों के साथ सक्रिय हो गये। अपने लेखन को भी उन्होंने क्रांतिकारी दिशा दी। बगवाणी और शंख जैसी प्रसिद्ध बंगला पत्रिकाओं में उनका लेखन नियमित था। सर्वश्री रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र नाथ लाहिडी, अशफाक उल्ला खां, मन्मथनाथ गुप्त, शचीन्द्र नाथ बख्शी, रामदुलारे त्रिवेदी, मुरारी शर्मा, केशव चक्रवर्ती, मुकुन्दीलाल गुप्त, चंद्रशेखर आजाद और मुखबिर बनवारी लाल ने दिनांक 9 अगस्त 1925 लगभग 6 बजे शाम को रुहेलखंड अवध गाड़ी को लूटने का निर्णय किया। रेल काकोरी से लखनऊ जा रही थी। इसमें टिकट बिक्री का एकत्रित धन था। अभियान को सफल करके क्रांतिकारी तितर-बितर हो गए। राजेन्द्र लाहिड़ी 26 सितंबर को वाराणसी से कोलकाता चले गये।

दक्षिणेश्वर के निकट क्रांतिकारियों का एक गुप्त मिलन केंद्र था जिस पर पुलिस ने छापा मारा और अभियुक्तों को हिरासत में ले लिया। इन देश भक्तों पर मुकदमा चलाया गया और काले पानी की कठोर सजा दी गई। 17 दिसम्बर 1927 को गोण्डा जेल के बाहर लोग राजेन्द्र लाहिड़ी की जय-जयकार कर रहे थे। राजेन्द्र इतने प्रसन्न थे कि उनका वजन 5 पौंड बढ़ गया था।

राजेन्द्र ने प्रातःकालीन कार्य किये। इसमें व्यायाम और गीतापाठ था। जिलाधिकारी ने यह सब देखा तो पूछा कि 'फांसी से पूर्व यह क्यों?' राजेन्द्र ने उत्तर दिया, 'मेरा नाम राजेन्द्र लाहिड़ी है। मेरी धारणा है कि इस भौतिक शरीर को जिसे मैंने बड़े यत्न से अपने आचरण और कर्तव्य के आगे पवित्र रखा है, स्वस्थ तन और स्वस्थ मन से इसी भारत माता की गोदी में पुनः जन्म लूंगा और अपनी मातृभूमि की सेवा करूंगा। मैं मरने नहीं जा रहा।

कलक्टर साहब! मैं तो इस देश को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने का सपना साकार करने जा रहा हूं। चलिए, आप अपनी तैयारी कीजिए, मैं तैयार हूं।' और राजेन्द्र लाहिड़ी एक सुंदर सुगंधित पुष्प की तरह थोड़ी सी जिंदगी में ही लक्ष्य प्राप्ति कर अमित प्रेरणा और स्थायी यादगार बन गए।

राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी (जन्म 23 जून, 1901 बलिदान 17 दिसंबर, 1927) संभवतः सबसे कम अवस्था के काकोरी केस के छब्बीस वर्षीय शहीद थे। उनके पिता क्षितिमोहन और माता बसंत कुमारी थीं। एक सामान्य आर्थिक स्थिति के परिवार में रहकर उन्होंने स्नातक परीक्षा पास की किंतु परिवार बसाने और चलाने की बजाय शचीन्द्र नाथ सान्यास की प्रेरणा से देश स्वातंत्रय के लिए कांटों भरे रास्ते और जान जोखिम का खतरा हर क्षण होने का निश्चय किया। वे गर्म दल के सदस्यों के साथ सक्रिय हो गये। अपने लेखन को भी उन्होंने क्रांतिकारी दिशा दी। बगवाणी और शंख जैसी प्रसिद्ध बंगला पत्रिकाओं में उनका लेखन नियमित था। सर्वश्री रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र नाथ लाहिडी, अशफाक उल्ला खां, मन्मथनाथ गुप्त, शचीन्द्र नाथ बख्शी, रामदुलारे त्रिवेदी, मुरारी शर्मा, केशव चक्रवर्ती, मुकुन्दीलाल गुप्त, चंद्रशेखर आजाद और मुखबिर बनवारी लाल ने दिनांक 9 अगस्त 1925 लगभग 6 बजे शाम को रुहेलखंड अवध गाड़ी को लूटने का निर्णय किया। रेल काकोरी से लखनऊ जा रही थी। इसमें टिकट बिक्री का एकत्रित धन था। अभियान को सफल करके क्रांतिकारी तितर-बितर हो गए।

क्रांतिकारी योद्धा चंद्रशेखर आजाद

जयंती : 23 जुलाई पर शत्-शत् नमन

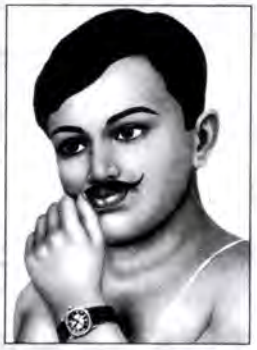

काकोरी ट्रेन डकैती और साण्डर्स की हत्या में शामिल निर्भय क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद का जन्म 23 जुलाई 1906 को उन्नाव, उत्तर प्रदेश में हुआ था। चन्द्रशेखर आजाद का वास्तविक नाम चन्द्रशेखर सीताराम तिवारी था। चन्द्रशेखर आजाद का प्रारंभिक जीवन आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र भावरा गांव में व्यतीत हुआ। भील बालकों के साथ रहते-रहते चन्द्रशेखर आजाद की माता जगरानी देवी उन्हें संस्कृत का विद्वान बनाना चाहती थीं। इसलिए उन्हें संस्कृत सीखने के लिए विद्यापीठ, बनारस भेजा गया। दिसम्बर 1921 में जब गांधी जी द्वारा असहयोग आंदोलन की शुरुआत की गयी इस समय मात्र चौहद वर्ष की उम्र में चंद्रशेखर आजाद ने इस आंदोलन में भाग लिया जिसके परिणामस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित किया गया। जब चन्द्रशेखर से उनका नाम पूछा गया तो उन्होंने अपना नाम आजाद और पिता का नाम 'स्वतंत्रता' बताया। यहीं से चन्द्रशेखर सीताराम तिवारी का नाम चन्द्रशेखर आजाद पड़ गया था। चंद्रशेखर को पंद्रह दिनों के कड़े कारावास की सजा दी गयी।

क्रांतिकारी जीवन : 1922 में गांधी जी द्वारा असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया गया। इस घटना ने चन्द्रशेखर आजाद को बहुत आहत किया। उन्होंने ठान लिया कि किसी भी तरह देश को स्वतंत्रता दिलवानी है। एक युवा क्रांतिकारी प्रनवेश चैटर्जी ने उन्हें हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन जैसे क्रांतिकारी दल के संस्थापक रामप्रसाद बिस्मिल से मिलवाया। आजाद इस दल और बिस्मिल और बिस्मिल के, 'समान स्वतंत्रता और बिना किसी भेदभाव के सभी को अधिकार' जैसे विचारों से बहुत प्रभावित हुए। चन्द्रशेखर आजाद के समर्पण और निष्ठा की पहचान करने के बाद बिस्मिल ने चन्द्रशेखर आजाद को अपनी संस्था का सक्रिय सदस्य बना दिया। अंग्रेजी सरकार के धन को चोरी और डकैती जैसे कार्यों को अंजाम देकर चन्द्रशेखर आजाद अपने साथियों के साथ संस्था के लिए धन एकत्र करते थे। लाला लाजपत राय की हत्या का बदला लेने के लिए चन्द्रशेखर आजाद ने अपने साथियों के साथ मिलकर सॉण्डर्स की हत्या भी की थी। आजाद का यह मानना था कि संघर्ष की राह में किसी हिंसा का होना कोई बड़ी बात नहीं है। इसके विपरीत हिंसा बेहद जरूरी है। जलियावाला बाग जैसे अमानवीय घटनाक्रम जिसमें हजारों निहत्थे और बेगुनाहों पर गोलियां बरसाई गई, ने चन्द्रशेखर आजाद को बहुत आहत किया जिसके बाद उन्होंने हिंसा को ही अपना मार्ग बना लिया।

झांसी में क्रांतिकारी गतिविधियां : चंद्रशेखर आजाद ने एक निर्धारित समय के लिए झांसी को अपना गढ़ बना लिया। झांसी से पंद्रह किलोमीटर दूर ओरछा के जंगलों में वह अपने साथियों के साथ निशानेबाजी किया करते थे। अचूक निशानेबाज होने के कारण आजाद दूसरे क्रांतिकारियों को प्रशिक्षण देने के साथ पंडित हरिशंकर ब्रह्मचारी के छद्म नाम से बच्चों के अध्यापन का कार्य भी करते थे। वह धिमारपुर गांव में अपने इसी छद्म नाम से स्थानीय लोगों के बीच बहुत लोकप्रिय हो गए थे। झांसी में रहते हुए चन्द्रशेखर आजाद ने गाड़ी चलानी भी सीख ली थी।

चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह : 1925 में हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन की स्थापना की गई। 1925 में ही काकोरी कांड हुआ जिसके आरोप में अशफाक उल्लाखां, रामप्रसाद बिस्मिल समेत अन्य मुख्य क्रांतिकारियों को मौत की सजा सुनाई गयी, जिसके बाद चंद्रशेखर ने इस संस्था का पुनर्गठन किया। भगवतीचरण वोहरा के सम्पर्क में आने के बाद चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु के भी निकट आ गए थे। इसके बाद भगत सिंह के साथ मिलकर चंद्रशेखर आजाद ने अंग्रेजी हुकूमत को डराने और भारत से खदेड़ने का हर सम्भव प्रयास किया।

चन्द्रशेखर आजाद का निधन : 1931 में फरवरी के अंतिम सप्ताह में जब आजाद गणेश शंकर विद्यार्थी से मिलने सीतापुर जेल गए तो विद्यार्थी ने उन्हें इलाहाबाद जाकर जवाहर लाल नेहरू से मिलने को कहा, चंद्रशेखर आजाद जब नेहरू से मिलने आनंद भवन गए तो उन्होंने चंद्रशेखर की बात सुनने से भी इन्कार कर दिया। गुस्से में वहां से निकलकर चंद्रशेखर आजाद अपने साथी सुखदेव राज के साथ एल्फ्रेड पार्क चले गये। वे सुखदेव के साथ आगामी योजनाओं के विषय में बात ही कर रहे थे कि पुलिस ने उन्हें घेर लिया, लेकिन उन्होंने बिना सोचे अपनी जेब से पिस्तौल निकालकर गोलियां दागनी शुरू कर दी। दोनों ओर से गोलीबारी हुई। जब चंद्रशेखर के पास मात्र एक ही गोली रह गई तो उन्हें पुलिस का सामना करना मुश्किल लगा। चंद्रशेखर आजाद ने पहले ही प्रण किया था कि वह कभी भी जिंदा पुलिस के हाथ नहीं आएंगे। इसी प्रण को निभाते हुए उन्होंने वह बची हुई गोली खुद को मार ली।

पुलिस के अंदर चंद्रशेखर आजाद का भय इतना था कि किसी को भी उनके मृत शरीर के पास जाने की हिम्मत नहीं थी। उनके मृत शरीर पर गोली चला और पूरी तरह आश्वस्त होने केबाद ही चंद्रशेखर की मृत्यु की पुष्टि हुई।

बाद में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जिस पार्क में उनका निधन हुआ था उसका नाम परिवर्तित कर 'चंद्रशेखर आजाद पार्क' और मध्य प्रदेश में जिस गांव में वह रहे थे उसका धिमारपुर नाम बदलकर आजादपुरा रखा गया।

भक्तराज अमींचन्द जी

पुण्यतिथि : 29 जुलाई पर शत्-शत् नमन

श्री राजेन्द्र जिज्ञासु

पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान में) के झेलम जनपद ने भारतभूमि व मानव-समाज को समय-समय पर कई महान विभूतियां देकर इतिहास में नये-नये अध्याय जोड़े हैं। बहुत पुराने समय की बात यदि हम न करें तो भी इसी युग में इसी झेलम जनपद ने सत्यनिष्ठ, वेदप्रिय, वीर-विप्र, रक्तसाक्षी पं. लेखरामजी को जन्म दिया। इसी धरती ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम के वीर योद्धा हुतात्मा खुशीराम को जन्म दिया। वीर खुशीराम ने अंग्रेजी साम्राज्य से जुझते हुए सीने पर सात गोलियां खाकर वीरगति पाई। इसी झेलम की धरती ने प्रखर क्रांतिकारी भाई बालमुकंद को जन्म दिया। सती माता रामरखी इसी धरती की देन थी। देवतास्वरूप भाई परमानंद को जन्म देने का अभिमान भी इसी झेलम जनपद को है।

इन पुण्यात्माओं के अतिरिक्त इस क्षेत्र ने एक और नररत्न को जन्म दिया। वे थे श्री अमींचन्द जी। आपका जन्म झेलम जिले की पिंडदादनखां तहसील के हिरणपुर ग्राम में हुआ। आप मोहियाल कुल में जन्मे। आपका गोत्र बाली था। मोहियाल ब्राह्मण बहुत बीर होते हैं। सैनिक स्वभाव के यो लोग सेना व पुलिस में ऊंचे-ऊंचे पदों को सुशोभित करते आए हैं। ये लोग सुशिक्षित व बुद्धिमान भी बहुत होते हैं। अमींचन्द जी को बाल्यकाल से ही संगीत में विशेष रुचि रही। इस कारण इनका संगत बिगड़ गयी।

मीरासियों व वेश्याओं की संगत से इनमें वे सब दोष आ गये जो मनुष्य को पतनोन्मुख कर देते हैं। आचार्य चमूपति जी ने भक्त जी की संक्षिप्त जीवनी में ठीक ही लिखा है- गानविद्या पर यह दैव का अत्याचार है कि यह विद्या दुराचारियों के हाथ जा पड़ी है। अमींचन्द गान रस का रसिया था। यही रस उसे दुराचारियों में ले गया और उनमें ऐसा फंसाया कि वहीं तन्मय कर दिया। मांस खाता, मद्य गीता और दिन-रात दुर्व्यसनियों को कुसंगति में रहता। उस युग में पंजाब में उर्दू का ही बोलबाला था। अमींचन्द भी उर्दू-फारसी के अच्छे ज्ञाता थे, परंतु उनके भजनों से यह पता चलता है कि उन्हें हिंदी का भी अच्छा ज्ञान था। संस्कृत का भी कुछ अध्ययन किया। यह कहना कठिन है कि संस्कृत, हिंदी का अध्ययन वैदिक धर्मी बनने के पश्चात् ही किया अथवा पहले से ही इन भाषाओं का ज्ञान था।

ये चुंगी के दरोगा बने और फिर स्थानापन्न तहसीलदार की पदवी प्राप्त हुई। उस काल के भारतीयों के लिए इस पद पर पहुंच जाना बड़ा सम्मानास्पद था। एक सेठ के गुमाशते से मिलकर वस्तुआं का अनुचित भाव लिख दिया। इससे उस गुमाशते को बहुत अधिक राशि मिलने की सम्भावना थी। ये सब कुछ हेरफेर ही तो थी।

भेद खुल गया। श्री अमींचन्द जी व तहसीलदार दोनों लपेट में आ गये। आपको त्यागपत्र देना पड़ा। तहसीलदार को तो कारावास का दंड भोगना पड़ा। सेठजी ने अमींचन्द जी को चालीस रुपये की बजाए साठ रुपये मासिक की नौकरी दे दी। वे कलकत्ता आदि दूरस्थ नगरों में कार्यरत रहे। नये-नये अनुभव प्राप्त हुए। कहते हैं कि वे तीन वर्ष तक झेलम से बाहर रहे।

धर्मवीर पं. लेखरामजी ने लिखा है कि अमींचन्द ने झेलम में ऋषि दयानंद जी के उपदेशामृत का पान किया, परंतु आर्यसमाज के इतिहास के एक मर्मज्ञ विद्वान पं. श्री विष्णुदत्त जी एडवोकेट तथा आचार्य चमूपति जी ने लिखा है कि एक डाक्टर महाशय अमींचन्द जी को गुजरात ले गये। वहीं आपने ऋषि के दर्शन किये और ऋषि दरबार में भजन गाये। वहां ऋषि जी ने कहा, 'है तो हीरा, परंतु कीचड़ में पड़ा है।' बस ऋषि के इस कृपाकटाक्ष से, इस एक वाक्य में अमींचन्द की काया ही पलट गई। वह आर्यसमाज का सभासद् बन गया। सब व्यसन छूट गये। बुराइयों की कीचड़ से निकल गया। आचार्य चमूपतिजी के शब्दों में- जो अनुराग उसे विषयभोग में था, वह अब ईश्वरभक्ति में हो गया।

यहां यह उल्लेखनीय है कि महर्षि दयानंद गुजरात से पूर्व झेलम पधारे थे। बीरवर लेखराम जी को लाला गंगाराम जी ने यह बताया था कि अमींचन्द जी ने झेलम में ऋषि की उपदेशमाला को सुना था। पं. लेखराम जी भी झेलम जिला के थे। भक्त अमींचन्द जी के साथ अमृतसर, लाहौर आदि समाजों के उत्सवों पर कई बार मिलकर प्रचार किया। ऐसा लगता है कि भक्तराज अमींचन्द जी ने ऋषि जी को पहले झेलम में सुना, पुनः गुजरात में सुना। जीवन परिवर्तन की घटना गुजरात की है। झेलम में अमींचन्द जी की ससुराल थी। उन्होंने वही कुछ भूमि ले ली। वही रहने लगे। दस वर्ष तक वहां आर्यसमाज के विभिन्न पदों को सुशोभित किया। मृत्यु के समय वे आर्यसमाज के प्रधान थे। पहले वे दीन वेदान्ती थे।

इसलिए उनके भजनों में कहीं-कहीं संसार की असारता पर अधिक बल दिया गया है। पहले वे गजलें लिखा करते थे, अब भजन लिखने लगे। उनके गले में विशेष रस था। श्रोता उनके सरस भजनों को उन्हीं के मुख से सुनकर भावविभोर होकर झूम उठते थे। आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों पर उनके भजनोंपदेश की तत्कालीन पत्रों के सम्पादकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

अमींचन्द जी ने संस्कृत, हिंदी, उर्दू व पंजाबी में भजनों की रचना की है। डोगरी भाषा में भी कुछ भजन रचे हैं भक्तिरस तो उनका प्रधान विषय था ही। अन्य सामाजिक, धार्मिक व राष्ट्रीय विषयों पर भी लिखा है। वे समय, स्थान व परिस्थिति के अनुसार गीत रच देते थे। एक बार कुछ मेहतर बंधु उनसे मिलने

आये। आपने तत्काल उन्हीं की स्थिति के अनुकूल प्रभुभक्ति का एक भजन रच दिया जिसका भाव यह था कि हम सूखी-बासी रोटी खाते हैं, हम छोटे जाने जाते हैं, परंतु हम परमेश्वर के गीत गाते हैं। एक बार आपके पास कुछ नाविक आये उन्हें ले-जाकर नौका में बिठाया। वहां उन्होंने नाविकों की स्थिति के अनुकूल एक मधुर भजन सुनाया।

भक्त अमींचन्द एक बार लुधियाना पधारे। उत्सव की कार्यवाही के पश्चात् भोजन करके आप लुधियाना की एक-एक दुकान पर जाने का यत्न करते थे। वे दुकानों पर माल खरीदने के लिए नहीं जाते थे। उनका प्रयोजन यह होता था कि देखें तो सही लोगों पर हमारे प्रचार का कैसा व कितना प्रभाव पड़ा है। जहां भी चार व्यक्ति एकत्र हुए देखते थे, भक्तजी उनकी चर्चा सुनते।

आर्यसमाज के उत्सव की तो नगर भर में धूम थी ही। जो कुछ लोग कहते थे, मेहता अमींचन्द जी अपनी नोटबुक में लिख लेते। अपने ठिकाने पर आकर लोगों की चर्चा व सम्मति पर वे एक गीत रच देते। जब उनके भजनों की बारी आती तो अपनी नवीन रचना बड़े अनूठे ढंग से सुनाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। आर्यसमाज लुधियाना के पचास वर्षीय इतिहास में दी गई इस घटना से पता चलता है कि ऐसे लगनशील और तपस्वी लोगों के पुरुषार्थ से ही आर्यसमाज का संगठन आगे बढ़ता गया।

वर्तमान में हमारे अधिकारी, कार्यकर्ता, विद्वान एवं उपदेशक इसी पद्धति से कार्य करें तो कितना उत्तम रहे। हमारे कार्य की सफलता इसमें है कि हमारे प्रचार से लोग यज्ञ, संध्या, स्वाध्याय का व्रत लें और मांस, मदिरा आदि दुर्गुणों को छोडें।

आर्यसमाज बच्छोवाली का वार्षिकोत्सव था। वहां आपने अंतिम बार अपना भजन सुनाया। वह उनकी अंतिम रचना कही जा सकती है। गीत बड़ा लम्बा व भावपर्ण था। उसके कुछ पद्य इस प्रकार हैं-

काल की आज्ञा में कैसे-कैसे जोर-आवर चले।
क्या मजाल इस हुकम की कोई अदूली कर सके।।
मुखतार और वकुला बैरिस्टर कुल मुकदमा हर चले।
झूठ की तकरीर व मन्तक इस जगह क्योंकर चले।।
वैद्य और हुकमा यहां पर पढ़कर तिबे अकबर चले।
नुसखा न पाया मौत का हैरान हो डाक्टर चले।।
जमींदार और पत्तीदार नम्बरदार नम्बर पर चले।
अंत को बेदखल हो, देखो वे धरती धर चले।।
कलयुग चले, सतयुग चले, त्रेता चले, द्वापर चले।
राम चले, रावण चले, अमींचन्द नंद नंदन चले।।

जब अपनी कमर में तबला बांधे भक्तजी झूम-झूमकर यह भजन गा रहे थे तो किसे पता था कि यह उनका अंतिम भजन है।

मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपनी सर्वसम्पत्ति दान में देने का मृत्यु-पत्र लिख दिया था, परंतु उनकी इस अंतिम इच्छा का पालन नहीं किया गया। 29 जुलाई सन् 1893 ई. को आपका निधन हुआ। समस्त आर्यजगत में आपकी मृत्यु का शोक मनाया गया। आपके जीवन में ऋषिजी के एक ही करुणा-कटाक्ष से जो परिवर्तन आया, वह कल्याण-मार्ग के प्रत्येक पथिक के लिए अत्यंत प्रेरक घटना है। ○○

राग = रामकली, ताल=झप

जय जय पिता परम आनंद दाता। जगदादि कारण मुक्ति प्रदाता॥
अनंत और अनादि विशेषण हैं तेरे। सृष्टि का स्रष्टा तू धर्ता संहर्ता॥
सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तू स्थूल है इतना। कि जिसमें यह ब्रह्माण्ड सारा समाता॥
मैं लालित व पालित हूं पितृस्नेह का। यह प्राकृत संबंध है तुझसे ताता॥
करो शुद्ध निर्मल मेरे आत्मा को। करूं मैं विनय नित्य सायं व प्रातः॥
मिटाओ मेरे भय ये आवागमन के। फिरूं न जन्म पाता और बिलबिलाता॥
बिना तेरे है कौन दीनन का बंधु। कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता॥
'अमी' रस पिलाओ कृपा करके मुझको। रहूं सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता॥

रागिनी=देशकाल, ताल=झप

तुम हो प्रभु चांद मैं हूं चकोरा। तुम हो कंवल फूल मैं रस का भौंरा॥
ज्योति तुम्हारी का मैं हूं पतंगा। आनंद घन तुम हो, मैं वन का भौंरा॥
जैसे हो चुम्बक की लोहे से प्रीति। आकर्षण करे मोहे लगातार तोरा॥
पानी बिन जैसे हो मीन व्याकुल। ऐसे ही तड़पाए तुमरा विछोड़ा॥
इक बूंद जल का मैं प्यासा हूं चातक। अमृत की करो वर्षा हरो ताप मोरा॥

रागिनी=देशी, ताल=झप

तुम्हारी कृपा से जो आनंद पाया। वाणी से जाए वह क्योंकर बताया॥
नहीं है यह वह रस जिसे रसना चाखे। नहीं रूप उसका कभी दृष्टि आया॥
नहीं है यह गुण गंध जो घ्राण जाने। त्वचा से न जाए छुआ वो छुआया॥
संख्या में आना असम्भव है उसका। दिशा-काल में भी रहे न समाया॥
तुम-सा न दाता है तुम-सा न दानी। इतना बड़ा दान जिसने दिलाया॥
आत्मोन्नति में तुम्हारी दया से। मेरी जिंदगी ने अजब पलटा खाया॥
सत्-चित् आनंद अनंतस्वरूप। मुझे मेरे अनुभव ने निश्चय कराया॥
गूंगे की रसना के सदृश 'अमींचन्द'। कैसे बताए कि क्या रस उड़ाया॥

रागिनी=जोगिया, ताल=धीमा तीन

जो हरि गीत प्रीति से गाए। तिस के शोक निकट नहीं आए॥
सुधा सरस चरित मनोहर। मन का ताप बुझाए॥
हे प्रभु हम अत्यंत दुखी हो। तब चरणों में आए॥
मंगल दाता प्रेम प्रदाता। तू ने नाम धराए॥
मांग रहे द्वारे पर याचक। फिर क्यों देर लगाए॥
विषयों से उपराम रहें नित। भक्ति हृदय में छाए॥
वेद-शास्त्र का पाठ 'अमींचन्द'। संशय सकल मिटाए॥

मातृभूमि का मातृत्व

ओमकार शास्त्री
संस्कृत प्रवक्ता, आर्ष गुरुकुल, नोएडा

जन्म स्थान या अपने देश को मातृभूमि कहा जाता है भारत में भूमि को माता के रूप में माना जाता है। जन्मभूमि को भी मातृभूमि कहते है। इसलिए कहा भी जाता है- 'जननी जन्मभूमि स्वर्गादपि गरीयसी' मातृभूमि के महत्व के संबंध में अथर्ववेद में बतलाया है-

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरणवे
रजसि प्रविष्टाम्।
भूजिष्यं पात्र निहित गुहा यदावि भोगे
अभवन्मत्मदयः।।अथर्व.12.1.60।।

अर्थ : जल में और मिट्टी में छिपी हुई जिस भूमि को विश्वकर्मा बहुविधि कर्मशील पुरुष आत्मव्योम पूर्वक उसे माता समझने वालों के लिए जो भोग्य पदार्थ और रक्षण गुफा में रखे हुए पदार्थ की तरह छिपा रहता है; वह उपभोग के लिए प्रकट हो जाता है जिसे हम मातृभमि और पितृभूमि आदि सम्मानसूचक और प्रेम भरे शब्दों से स्मरण करते हैं वह वास्तव में क्या वस्तु है? यदि एक द्रष्टि से देखें तो वह पानी और मिटटी या इनके आधार पर बने पहाड़ जंगल आदि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। हमारी मातृभूमि पानी के समुदाय में न पाया मातृत्व और क्या पितृत्व? मिट्टी और पानी के समुदाय में क्या मातृत्व और क्या पितृत्व? मिट्टी और पानी के समुदाय में पाया न पाया जाने वाला यह मातृत्व और पितृत्व उसे हमें अपने मन में से देना होता है। भौतिक के साथ मानसिक मिलाना पड़ता है तब हमें मातृभूमि या पितृभूमि प्राप्त होती है, मातृभूमि के तत्व को समझाया गया है।

मातृभूमि क्या है? वेद उत्तर देता है-जल और मिट्टी में रखे हुए घरती के जिस स्वरूप को विश्वकर्मा माता चाहने लग जाता है वही मातृभूमि हो जाती है। मनुष्य को ऐसा करने की आवश्यकता क्यों होती है-पानी और मिट्टी के ढेर में मातृत्व-बुद्धि पैदा करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? परमात्मा ने मनुष्य में ऐसा करने की भावना क्यों भर दी? उसे ऐसा करना क्यों चाहिए? इसका उत्तर मंत्र का उत्तरार्द्ध देता है। जो लोग पानी और मिट्टी से बनी हुई भूमि को माता की बुद्धि से देखने लग जाते हैं उनके लिये भोग और रक्षा प्रकट हो जाते हैं। ऐसे भोग्य पदार्थ और तज्जन्य सुख-सम्भार प्रादुर्भूत होते हैं जो इस बुद्धि के बिना सदा ही अंधकार में लीन रहते-कभी मिल ही नहीं सकते।

किसी भूखंड को मातृभूमि या माता समझने का अभिप्राय है? जैसे मैं अपनी पैदा करने वाली माता को अपना समझता हूं, उसके मान-अपमान को अपना, उसके सुख-दुख को अपना सुख-दुख और उसके मंगल-अमंगल को अपना मंगल अमंगल मानता हूं, वैसे ही जब मैं किसी प्रदेश को अपना मानने लगूं तब यह कहा जायगा कि मैं उस भू-भाग को अपनी मातृभूमि समझता हूं। जब किसी देश में रहने वाले लोगों के अंदर उसके और उसके निवासियों के प्रति इतने गहरे आत्मीय भाव पैदा हो जाते हैं जिनकी कभी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। पर इसके लिये व्यक्ति को आत्म-त्याग करना पड़ता है-हवि देनी होती है।

यह अवस्था तो होती है तब जब कि मनुष्य पृथक-पृथक भू-भागों को मातृभूमि समझने लगते हैं। किन्तु जब मनुष्य सारी भूमि को ही मातृभूमि समझने लग जाएगें तब उनके सुख सम्भार और मंगल-वैभव का जो स्वरूप होगा उसकी आज हम शायद पूरी तरह कल्पना भी नहीं कर सकते। वेद के जिस सूक्त का यह मंत्र है वह अंततोगत्वा हमें मातृभूमि के इतने ऊंचे आदर्श पर ही ले जाना चाहता है। कैसे लोग मातृभमि की भावना से सुख-मंगल प्राप्त कर सकेगें? वेद उत्तर देता है-विश्वकर्मा। जो नाना भांति के कर्म करने में प्रवीण हैं वे ही मातृभूमि से सुख ले सकते हैं।

अकर्मण्य लोग मातृभूमि का दूध नहीं पी सकते। माता का दूध भी वही बच्चा पी सकता है जो हाथ पांव मुंह हिला सकता है। क्रियाहीन को कोई भी माता दूध नहीं पिला सकती। जिस देश में लोग जितने अधिक विश्वकर्मा अर्थात् परिश्रमी होगें उस देश की सुख-सम्पत्ति उतनी ही अधिक वृद्धि प्राप्त करेगी! भूमि को माता समझना और विश्वकर्मा बनना सीख, तेरे लिए सुख-सम्पत्ति के भंडार खुल पड़ेगें और जीवन आनंदमय हो जायेगा। मातृभूमि का ऋण कभी उतारा नहीं जा सकता। इस ऋण की खातिर ऋषियों-महर्षियों ने अपने सम्पूर्ण जीवन को मातृभूमि के निर्माण कार्यो में लगा दिया जिससे लोक में निवास करने वाले जीव को किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े। अथर्ववेद के पृथ्वी सुक्त में वेद कहता है कि 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या' अर्थात भूमि हमारी हमारी माता और हम इसके पुत्र हैं। इसलिये मातृभूमि के मानवमात्र पर बड़े उपकार हैं।

जल और मिट्टी में रखे हुए घरती के जिस स्वरूप को विश्वकर्मा माता चाहने लग जाता है वही मातृभूमि हो जाती है। मनुष्य को ऐसा करने की आवश्यकता क्यों होती है-पानी और मिट्टी के ढेर में मातृत्व-बुद्धि पैदा करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? परमात्मा ने मनुष्य में ऐसा करने की भावना क्यों भर दी? उसे ऐसा करना क्यों चाहिए? इसका उत्तर मंत्र का उत्तरार्द्ध देता है। जो लोग पानी और मिट्टी से बनी हुई भूमि को माता की बुद्धि से देखने लग जाते हैं उनके लिये भोग और रक्षा प्रकट हो जाते हैं।

आर्य समाज का पंचम नियम...

विजय बिहारी लाल माथुर

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए

धर्म से तात्पर्य : धर्मानुसार जीवन के सारे कार्य करने का आदेश पंचम नियम में दिया गया है। धर्म की अनेक व्याख्याएं एवं अर्थ हैं, इतने कि उनमें सामान्य मानव ही नहीं अच्छा विद्वान भी भूल भुलैया की भांति भटक सकता है। इसी नियम में धर्मानुसार कार्य करने की कसौटी भी प्रस्तुत कर दी गई है धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

धर्म की इस अनुपम व्याख्या पर विचार करने से पूर्व अन्य व्याख्याओं, परिभाषाओं एवं मान्यताओं पर भी संक्षेप से विचार करना उचित होगा। धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसके मुख्य अर्थ हैं- 'धारणे, स्थितौ तथा पतने' आदि। धर्म बहुत संकुचित एवं लघु प्रतीत होता है। जिसे धारण किया जाए अथवा जो धारण करे वह धर्म है। अग्नि का धर्म दहकता एवं प्रकाश तथा उर्ध्वगामी रहना है, जल का धर्म शीतलता एवं अधोगामी रहना है, सूर्य का धर्म प्रकाश, ऊर्जा, उष्णता प्रदान करना है, पृथ्वी का धर्म सहनशीलता, दृढ़ता है। ये सब उदाहरण सिद्ध करते हैं कि धर्म का एक क्षेत्र प्रकृति के नियम है।

धर्म एवं कर्त्तव्य पालन : माता-पिता का धर्म अपनी संतान का लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा आदि की व्यवस्था करना है, गुरु का धर्म शिष्यों को निष्कपट भाव से ज्ञान प्रदान करना है आदि-आदि। प्रत्येक के धर्म की लंबी सूची बनाई जा सकती है। संक्षेप में धर्म का अभिप्राय कर्त्तव्यपालन है। आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं नेता स्व. महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने कर्त्तव्यपालन को कतिपय क्षेत्रों में विभाजित किया है-

हमारा अपने प्रति कर्त्तव्य : (अ) इंद्रियों को बलवान व शरीर को स्वस्थ बनाना। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। (मुण्क. २/३/४)

निर्मल जन ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। 'शरीरमाद्यं खुल धर्मसाधनम्' शरीर ही सारे धार्मिक कार्यों के करने का मुख्य साधन है। यह साधन ही निर्बल होगा तो धर्म का क्या पालन होगा? शरीर बलवान तो हो परंतु यह बल सदुपयोग में आए जैसे कि मर्यादापुरुषोत्तम राम का, न कि दुरुपयोग में आए जैसे कि राक्षसराज रावण का। इस सदुपयोग एवं दुरुपयोग का निर्णय सत्य एवं असत्य की कसौटी से होगा। जहां बल का उपयोग सत्य की रक्षा हेतु है, वह सदुपयोग है, जहां असत्य के प्रसार हेतु है, वह दुरुपयोग है।

(आ) इंद्रियों को इस प्रकार के कार्यों में लगाना, जिससे कर्ता को यश प्राप्त हो। इस आधार पर सत्य की रक्षा होगी। यश प्रदान कराने कार्य कभी सत्य से वंचित नहीं होंगे।

(इ) इंद्रियों को पवित्र बनाना।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।। मनु.

जल से इंद्रियां, सत्य से मन, विद्या व तप से आत्मा तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। इन सभी के पवित्र होने पर कोई असत्याचरण नहीं होगा।

२. हमें अन्यों के साथ क्या करना चाहिए? किसी के प्रति वैर एवं द्वेष की भावना न रखें, अपने से बड़ों, बराबर वाले व छोटों के प्रति यथोचित व्यवहार रखें। जो हमसे द्वेष भी रखे उसे ईश्वरीय न्याय पर छोड़कर हम किसी के प्रति द्वेषभाव न रखें। राष्ट्र व प्राणिमात्र के साथ प्रेम से यथोचित व्यवहार करें।

३. हमारा ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य- हम ईश्वर उपासना करें या न करें ईश्वर पर कुछ प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। जैसे शीत से दुखी व्यक्ति अग्नि के निकट जाए तो व्यक्ति का शीत निवारण होगा, अग्नि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। ईश्वर के सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी होने के गुणों को स्वीकार करने से हम अपने आप को अशुभ एवं पाप कर्मों से बचा सकते हैं। उसे सर्वशक्तिमान सारे ब्रह्माण्ड का रचयिता, पालक, संहारक स्वीकार करने से अपनी लघुता का अनुभव होता है, तथा हम अभिमान, जो सर्वनाश का प्रारंभ करता है, से बच सकते हैं।

जिन गुणों के आधार पर हमारे कर्त्तव्य एवं आचरण होने चाहिए उन्हें महाराज मनु ने धर्म लक्षणों के रूप में उत्तम रीति से प्रस्तुत किया है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शोचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। मनु.

अर्थात् निम्न गुणों एवं लक्षणों से युक्त कार्य धर्म होगा-

१. धर्म २. क्षमा ३. दमन (अपनी इच्छाओं का) ४. अस्तेय चोरी न करना ५. शौच अर्थात् शरीर, मन बुद्धि की पवित्रता ६. इंद्रिय निग्रह ७. धी अर्थात् उत्तम बुद्धि ८. विद्या ९. सत्य एवं १०. क्रोध न करना। आशय यही है कि जिन कार्यों में उपर्युक्त दश गुण विद्यमान हों वही धर्म है तथा जहां इन गुणों का अभाव हो वही उस अभाव की सीमा तक अधर्म है।

इसी संबंध में महाराज मनु पुनः कहते हैं-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। मनु. २/१२

मनुस्मृति में ही अन्यत्र भी कहा है 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' दोनों वचनों का आशय है कि वेद तथा स्मृति प्रतिपादित और जो अपनी आत्मा को प्रिय लगे वही धर्म है अर्थात् मनुष्य की सात्विक, शुद्ध, पक्षपातरहित, निस्वार्थ आत्मा जिस कार्य में प्रवृत्त हो वह भी धर्म है। इसी कथन को सम्पुष्ट करते हुए मीमांसा दर्शन में भी प्रेरणा

धर्म की अनुपम व्याख्या पर विचार करने से पूर्व अन्य व्याख्याओं, परिभाषाओं एवं मान्यताओं पर भी संक्षेप से विचार करना उचित होगा। धर्म शब्द धृ धातु से बना है जिसके मुख्य अर्थ हैं- 'धारणे, स्थितौ तथा पतने' आदि। धर्म बहुत संकुचित एवं लघु प्रतीत होता है। जिसे धारण किया जाए अथवा जो धारण करे वह धर्म है। अग्नि का धर्म दाहकता एवं प्रकाश तथा उर्ध्वगामी रहना है, जल का धर्म शीतलता एवं अधोगामी रहना है, सूर्य का धर्म प्रकाश, ऊर्जा, उष्णता प्रदान करना है, पृथ्वी का धर्म सहनशीलता, दृढ़ता है। ये सब उदाहरण सिद्ध करते हैं कि धर्म का एक क्षेत्र प्रकृति के नियम है। धर्म एवं कर्त्तव्य पालन : माता-पिता का धर्म अपनी संतान का लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा आदि की व्यवस्था करना है, गुरु का धर्म शिष्यों को निष्कपटभाव से ज्ञान प्रदान करना है आदि-आदि। प्रत्येक के धर्म की लंबी सूची बनाई जा सकती है। संक्षेप में धर्म का अभिप्राय कर्त्तव्यपालन है। आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं नेता स्व. महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने कर्त्तव्यपालन को कतिपय क्षेत्रों में विभाजित किया है- हमारा अपने प्रति कर्त्तव्य : (अ) इंद्रियों को बलवान व शरीर को स्वस्थ बनाना। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। (मुण्क. 2/3/4) निर्मल जन ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। 'शरीरमाद्यं खुल धर्मसाधनम्' शरीर ही सारे धार्मिक कार्यों के करने का मुख्य साधन है।

को धर्म का लक्षण कहा है। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार- 'त्रयो धर्मस्कंधा यज्ञोध्ययनदानमिति'

अर्थात् धर्मरूपी वृक्ष के तीन स्कंध हैं १. यज्ञ २. अध्ययन तथा ३. दान। अध्ययन के द्वारा सत्यज्ञान की प्राप्ति होगी जिससे करणीय एवं निषिद्ध कर्मों के विभाजन की क्षमता मिलेगी। दान के अंतर्गत ब्राह्मण ज्ञान-क्षत्रिय अभयता का और वैश्य धन सम्पत्ति का दान करें जिससे समाज में समता विकसित होगी, अज्ञानी व निर्धन ज्ञान व धनादि के दान से एवं निर्मल को अभयता के दान से रक्तहीन साम्यवाद का प्रसार होगा। यज्ञ से अभिप्राय देवपूजा, संगतिकरण व दान है। यज्ञ एक कर्मकाण्ड की क्रिया ही न होकर वास्तव में समग्र जीवन पद्धति है जो कि मुख्यतया अपने स्वार्थों एवं हितों को समाज के कल्याण हेतु स्वेच्छा से बलिदान कर सबके हित के माध्यम से अपने व्यक्तिगत हित की कामना करते हुए संघर्ष के कल्याण की कामना करती है।

वास्तव में धर्म की हम रक्षा करते हैं तथा प्रतिफलस्वरूप धर्म हमारी रक्षा करता है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।। मनु. ८/१५

हमारे द्वारा रक्षित धर्म हमारी रक्षा करता है तथा हमारे द्वारा मारा हुआ धर्म हमारा नाश कर देता है, अतः हमें चाहिए कि हम धर्म को न मारें जिससे वह हमें न मारे।

आर्ष धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धते सधर्म वेद नेतरः।। मनु. १२/१०६

अन्यत्र कहा है-

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

जो अपनी आत्मा के प्रतिकूल है वह मत करो। सामान्य पारस्परिक व्यवहार के स्तर पर जैसा हम चाहते हैं कि दूसरे हमारे साथ न करें, वैसा हमें वांछित है कि हम भी दूसरों के साथ न करें, इसका विपरीत भाव हुआ कि हम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा कि हम चाहते हैं कि दूसरे हमारे साथ करें।

धर्म संबंधी उपर्युक्त सभी उद्धरणों एवं विवेचन से यह स्पष्ट है कि धर्म का अभिप्राय हिंदू, इस्लाम, ईसाई आदि नहीं है। न इसका अभिप्राय वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन, सुन्नी, शिया, कैथोलिक, प्रोटेस्टेण्ट, हीनयान, महायान अथवा श्वेताम्बर, दिगम्बर, तेरापंथी, मंदिर मार्गी आदि सम्प्रदाय है। धर्म शब्द के उच्च एवं व्यापक अभिप्राय से इनका केवल आंशिक संबंध है। जबकि धर्म का क्षेत्र जन्म, जाति, देश, काल, लिंग, रंग या ऊंच-नीच के भेदभाव के बिना समग्र मानवमात्र है।

आर्यसमाज के इस पंचम नियम में धर्माचरण एवं सत्य असत्य को विचार कर आचरण करने का आदेश है। सत्य, असत्य पर पूर्ण बल आर्यसमाज के चतुर्थ नियम में दिया गया है जिस पर विवेचन प्रस्तुत किया जा चुका है। उस चतुर्थ नियम के विवेचन तथा पंचम नियम की व्याख्या को एक दूसरे का पूरक समझते हुए पढ़ना व आचरण करना हितकारी है। धर्म की उपर्युक्त सभी व अन्य श्रेष्ठ परिभाषाएं स्पष्ट करती हैं कि सत्य की भांति धर्म को भी बौद्धिक व्यायाम या शास्त्रीय विवेचनमात्र तक सीमित रखने से हमारा व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय, आध्यात्मिक अथवा अन्य कोई कल्याण होने वाला नहीं है। धर्म का विवेचन तो मार्ग दर्शकमात्र का कार्य करता है, वास्तविक कल्याण तो धर्म को करने, उसे जीवन के कर्त्तव्यों में व्याप्त करने में है तथा यह बात धर्म शब्द के अर्थ से ही स्पष्ट है कि धर्म धारण किये जाने वाला तत्व है तथा इसका जीवन की सभी दैनिक सामान्य क्रियाओं से सीधा संबंध है।

धर्म का व्यवहारिक जीवन में ग्रहण : चतुर्थ नियम की व्याख्या में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि सत्य का व्यवहारिक जीवन में ग्रहण किस प्रकार कल्याणकारक है। धर्म भी केवल सैद्धांतिक विवेचन का विषय उसी सीमा तक है, जहां तक इस विवेचन से सही मार्गदर्शक ज्ञान प्राप्त हो। तत्पश्चात् धर्म वास्तव में जीवन की क्रियाओं में उतारी जाने वाली एवं जीवन को समग्ररूप से प्रभावित व संचालित करने वाली शक्ति है। धर्म से परिपूर्ण, आच्छादित व नियंत्रित जीवन पद्धति का वैदिक ऋषि मुनियों एवं स्मृतिकारों ने एक स्पष्ट स्वरूप एवं उस स्वरूप के आधारभूत सिद्धांत सुनिश्चित किये हैं। उस स्वरूप एवं आधारभूत सिद्धांतों का संक्षिप्त परिचय उपयोगी रहेगा।

The Vedas

Naranjan Singh

The Vedas are said to be the oldest scriptures of mankind. They contain the multi-dimensional depiction of human civilisation in all its entirety from creation onwards to the Creator Himself. Presently, we are concerned with the philosophy of one God as such. Generally, there is a misconception about the Vedas that they are polytheistic which means that there is worship of one and one God alone. The Gods like Indra, Agni, Varuna, Rudra etc. are only different names which represent God's various powers and attributes. This has been clarified time and again that these manifested powers (gods) are only different aspects of one Supreme Lord. The Rigveda says:

That one Supreme reality has been styled by various names by the learned seers. They call one by many names; They speak of 'Him' as Indra, the Lord Resplendent; Mitra, the Surveyor; Varuna, the Virtuous; and Agni the Adorable.

Rigveda 1.164.46

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

The same view has been expressed in the Yajur Veda:

May it be called Agni, Aditya, Vayu or Chandrma.
All are the names of Supreme Spirit.
He is Brahma and Praja-Pati, the Supreme Lord of all,
He is the ultimate power, protector of all beings.

Yajur 32.1

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तदु चन्द्रमा।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।।

In fact, the entire universe has been taken as one living organism by the Vedic Rishis. The unmanifest formless God is the source of this universe and the entire creation is His manifest form. Let us see various references in support if the thesis that God is one and one alone:

The beginning was Hiranyagarbha (Golden Womb)
The seed of element existence.
The only Lord of all that was born.
He upheld the earth and heaven together.
To what god other than Him
could we dedicate our life?

Yajur 23.1(1307)

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

Again:

He is void of form, dwelleth on and out
of everything with form and shape.
He is free from lapses, faults and impurities.
He transcendeth all the bodily faculties, being the Devine Poet.
He is genius maintaining peace and harmony.
He manifesteth;
He sustaineth creation in perfect order.

Yajur Ved40:2(1966)

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा श्वतीभ्यः समाभ्यः।।

Also:

The whole of the universe is stationed in the omnipresent and the omnipotent God We see Him in various forms. He brings to light all these worlds. Him they call Kala, Infinite, pervading the infinite space.

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वां भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन्।।

Further :

The creator is perfect.
He possesses perfect power
Whence is created perfect Nature?
The perfect universe derives life
from the perfect Creator.
Let us comprehend this perfect power
That bestows life on all beings.

Atharva 10.8.29

पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्ण पूर्णेन सिच्चयते।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते।।

And:

Through the divine energy of Supreme Being
This dynamic universe (VIRAT) comes into existence.

Rigveda 10.90.5

तस्माद्विरालजायत विराजो अधिपूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथोपुरः।।

Also:

See the unity in diversity,
Behold one divine form appearing in multiforms.
Immense is His vastness, unparalleled is His glory.
All the countless earths, suns and
planets which are seen, and which are
beyond our perceptions exist under His command.
Kindled in various forms, the perennial flame is one.
Sprinkling the world with golden beams at dawn.
Painting the evening clouds with
changing colors, the sun is one.

Rigveda 8.58.2

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः।
एकैवोषा सर्वमिदं वि भात्येक वा इदं वि बभूव सर्वम्।।

As already mentioned, the 'universe' of the Vedas is one living organism and was manifested by the formless God. It is God who is behind all the forces of Nature. In the Vedas, the creator and the creation are not separate but taken as one. When the Lord is invoked as one, He is also praised in terms of His attributes and functions which are charaterised by natural phenomena. The Vedic Rishis aimed at making the individuals one the universe right from creator to the creation:

Such is thy greatness, O Liberal Lord,
innumerable bodily forms are Thine.
Millions are in thy millon,
or thou a billion in thyself.

Atharva 13.4.12.13

तमिदं निगतं सहः स एव एक एकवृदेक एव।।

Also:

Seek Him everywhere.
All is within His reach
Full of wisdom.
He determineth,
what ought to be done.
He is our only recourse.
All powers are vested in Him.
He fulfilleth all our aspirations.
He is the source,
of all our nourishment and
vigour, intelligence and strength.

Rigveda 1.145.1

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वां ईयते सान्वीयते।
तस्मिन्सन्ति प्रशिषस्तस्मिनिन्ष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पति।।

Again:

O Man, ye knoweth not God
who has manifest this perfect universe.
That subtle self present in the entire creation
although totally different from everything else,
Mired in ignorance, engaged in empty talk and disputations and merely engaged in livelihood and self-protection go about indulging in vain controversies, And are unable to see him.

Yajur 17.6.31

And:

Omniscent God is the creator of all creations. protector of everyone. He remains intimately one with them.The knowers of God, the upper middle and lower enjoy variety of bounties in life.

न तं विदाथ य इमा जजाना न्यधुष्माकमन्तं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासूतृप 5 उक्थशासश्चवरन्ति।।

Revelation Through Teacher

The knowers of God is said to be intimately related to Him and knows the secrets of cosmic power. To quote the Atharva Veda:

प्र यो अज्रे विद्वानस्य बंधु विश्वा देवानां जानि मा विवक्ति।
ब्रह्म ब्राह्मण उज्जभार मध्यानीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ।।
(अथवेवेद ५९३)

And only the knowers of God can explain the real original form of god **(निज स्वरूप)**

The enlightened alone can specifically
Unveil the secret of God,
He is one with them in all respects,
Only the blesses few know this.

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धवो धाम विभृतं गुहा सत्।। 688।।

It is duly stressed in the Vedas that only the knowers of God can share this Divine knowledge with others. They believed to be the most beloved souls on earth. God proclaims and blesses the human beings like Him:

It is Me that teacher of truth
Illuminate, spreading knowledge
of me far and wide; adored by all worlds.
I cherish them with tender care.

Rigveda 8.100.4

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जाताभ्यय्यसि मन्हा।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिशे भुवना दर्दशीमि।। 76.30।।

No Rituals (Karma Kanda)

The Vedas lay direct stress on knowledge of God through Teacher and do not prescribe any rites and rituals for the same. It is mentioned in the Vedas that to know God is primary aim of human life and to attain knowledge of God is the only path. This clearly means that it is direct perception of God which is prescribed by the Vedas not any rituals or other acts which the clergy enjoin upon human being to perform. To quote.

I, now realize the presence of the Almighty Lord, the universe entity, that one who is self-illuminated and radiant like the sun. He is beyond all darkness; with this realisation, now I fear not even death.

I proclaim, this is the path, the only Path to salvation, to the goal of life,The eternal bliss.

Yajur 31.18

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।। 18।।

प्रभु मिलन की राह

कन्हैया लाल आर्य

उस प्रभु से मिलने के लिए न धन की आवश्यकता है, न रूप की, न यौवन की, न उच्च कुल की। उसको मिलने के लिए केवल लग्न की सच्ची तड़प की आवश्यकता है। जब बच्चा माता की गोद में जाने के लिए तड़प उठता है तो संसार की कोई शक्ति उसे रोक नहीं पाती। माता बच्चे को रोते हुए देखकर कभी खिलौनों से, कभी मिष्ठान्न से उसका मन बहलाने का प्रयास करती है, परंतु बच्चा सब कुछ पाकर भी रोता जाये तो वह स्नेहमयी मां उस नन्हें बच्चे को गोद में उठा ही लेती है और अमृतमय दूध पिलाने लगती है। उस समय बच्चा मुस्कराकर देखता है और मौन भाषा में पूछता है, 'मां, जीत किसकी हुई तेरी या मेरी? मानना पड़ेगा कि अपनी सच्ची तड़प से बच्चा जीतता है और मां हार जाती है।

जब छोटे से बच्चे के अधिकार को प्रकृति की कोई शक्ति नहीं छीन सकती तो हम बच्चों को उस करुणामयी मां तक जाने से हमें कौन रोक सकता है? बस, हृदय में सच्ची लग्न और तड़प होनी चाहिए। जिस तरह एक भूखा मनुष्य रोटी के लिए और प्यासा मनुष्य पानी के लिए तड़पता है, उसी तरह हमें प्रभु को पाने के लिए तड़पना होगा। यदि हां, तो यही एकनिष्ठ प्रेम प्रभु प्राप्ति का सरल व सुगम उपाय है।

आवश्यकताएं तो मनुष्य की बहुत असीमित है। जल, वायु, भोजन, वस्त्र, आवास न जाने कितनी इच्छाएं हमारी है। इच्छाओं के आगे मानव निरंतर जलता रहता है। एक इच्छा की पूर्ति दूसरी इच्छा को प्रज्वलित करने में आहुति का काम करती है और इन इच्छाओं की अग्नि को शांत करने के लिए मनुष्य नाना प्रकार की सुख सामग्रियों का संग्रह करता है। संग्रह की यह प्रवृति उसे लोलुप बना देती है, यही लोलुपता उसकी बुद्धि को हर लेती है और इस प्रकार विचलित मानव स्वतः अशांति का शिकार हो जाता है। भर्तृहरि ने अपने वैराग्य शतक में इसका वर्णन इस प्रकार किया है-

भोगाः न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः, तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृश्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

मैं भी कितना मूर्ख हूं कि विषयों को भोगने की इच्छा में निरंतर डूबे रहने पर भी मैं इन्हें क्या भोगता? इन भोगों ने ही मुझे भोग लिया। मैं प्रभु के चरणों में ध्यान लगाकर तप क्या करता, संसार के तापों ने ही मुझे तपा दिया। मैं भोगों में समय को नष्ट करता रहा, परंतु यह समय तो नष्ट नहीं हुआ, मैं ही नष्ट हो गया। मेरी तृष्णा तो समाप्त नहीं हुई, मेरा यौवन ही समाप्त हो गया और मैं वृद्धावस्था में आज सब कुछ गवांकर मृत्यु के कगार पर खड़ा हूं।

कवि का यहां भाव निराशा से भरा हुआ है। वह वृद्धावस्था में पहुंचकर सोचता है कि सम्पूर्ण जीवन में उसने क्या प्राप्त किया? विषय भोग से कुछ प्राप्त तो नहीं हुआ, उल्टे यौवन और शरीर क्षीण हो गया। सारी आयु नष्ट हो गई, किंतु तृष्णा की पूर्ति नहीं हुई। परंतु अब मेरे पछताने से क्या होता है? अब तो सब कुछ नष्ट हो गया। न शरीर में शक्ति है, न आयु। अब प्रभु के चरणों में ध्यान लगाना चाहूं, तो कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। परंतु ऐसा नहीं है- जो बीती सो बीती लेकिन बाकी उमर संभालूं मैं। इस आशय से मुझे पुनः परोपकार के कार्यों में लगना होगा।

सम्पूर्ण इच्छाओं की ज्ञानाग्नि में भस्म करके परमार्थ भाव से शरीर रक्षा हेतु उत्पन्न सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला मनुष्य अपने जीवन का स्वामी होता है और ऐसे स्वामी के हृदय में शांति की ऐसी गंगा प्रवाहित होती है कि उसके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक मनुष्य शांति का अनुभव करता है।

एक बार भी जब मनुष्य का हृदय उस प्यारे प्रभु को पाने के लिए तड़प उठता है और विरह व्यथित भक्त की हृदय वीणा जब झंकृत होकर उस प्यारे को पुकारती है तो वह निश्चिंत, निष्कपट होकर ब्रह्मांड की सभी दिशाओं को चीरता हुआ उस करुणावरुणालय के हृदय को द्रवित कर

आवश्यकताएं तो मनुष्य की बहुत असीमित है। जल, वायु, भोजन, वस्त्र, आवास न जाने कितनी इच्छाएं हमारी है। इच्छाओं के आगे मानव निरंतर जलता रहता है। एक इच्छा की पूर्ति दूसरी इच्छा को प्रज्वलित करने में आहुति का काम करती है और इन इच्छाओं की अग्नि को शांत करने के लिए मनुष्य नाना प्रकार की सुख सामग्रियों का संग्रह करता है। संग्रह की यह प्रवृति उसे लोलुप बना देती है, यही लोलुपता उसकी बुद्धि को हर लेती है और इस प्रकार विचलित मानव स्वतः अशांति का शिकार हो जाता है। भर्तृहरि ने अपने वैराग्य शतक में इसका वर्णन इस प्रकार किया है- भोगाः न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः, तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः। कालो न यातो वयमेव यातास्तृश्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥ मैं भी कितना मूर्ख हूं कि विषय को भोगने की इच्छा में निरंतर डूबे रहने पर भी मैं इन्हें क्या भोगता? इन भोगों ने ही मुझे भोग लिया। मैं प्रभु के चरणों में ध्यान लगाकर तप क्या करता, संसार के तापों ने ही मुझे तपा दिया। मैं भोगों में समय को नष्ट करता रहा, परंतु यह समय तो नष्ट नहीं हुआ, मैं ही नष्ट हो गया। मेरी तृष्णा तो समाप्त नहीं हुई, मेरा यौवन ही समाप्त हो गया और मैं वृद्धावस्था में आज सब कुछ गवांकर मृत्यु के कगार पर खड़ा हूं। कवि का यहां भाव निराशा से भरा हुआ है। वह वृद्धावस्था में पहुंचकर सोचता है कि सम्पूर्ण जीवन में उसने क्या प्राप्त किया? विषय भोग से कुछ प्राप्त तो नहीं हुआ, उल्टे यौवन और शरीर क्षीण हो गया। सारी आयु नष्ट हो गई, किंतु तृष्णा की पूर्ति नहीं हुई।

देता है। वे कोमल हृदय प्रभु अपने प्यारे भक्त को मिलने के लिए तड़प उठते हैं। प्रभु को रिझाने के लिए कर्मों के आडंबर की आवश्यकता नहीं, वाक्चातुरी से मनुष्य प्रभु को रिझा नहीं सकता। प्रभु के दर पर आना अर्थात् परोपकार के कार्यों में अपने जीवन को लगाना, साधना करने और स्वाध्याय करने की आवश्यकता है।

यदि हमें कोई सामान चाहिए तो सबसे पहले हम यह पता करेंगे कि यह सामान किस नगर में मिलता है? फिर उस नगर के किस बाजार में बढ़िया और सस्ता सामान मिलता है? यह पता करके हम वहां जाएंगे। परंतु ईश्वर को पाना चाहते हैं तो कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं। जिस तरह वायु हमारे चारों ओर, ऊपर नीचे प्रत्येक क्षण रहती है, परंत हमें दिखाई नहीं देती उसी प्रकार परमात्मा भी प्रत्येक क्षण हमारे चारों ओर विद्यमान होता है क्योंकि वह सर्वव्यापक है तथा वह सर्वान्तर्यामी, सर्वदृष्टा होने के कारण उसकी दृष्टि हमारी प्रत्येक कृति, विचारधारा और कर्म पर होती है। अतः हमें परमात्मा के सूक्ष्म रूप को देखने के लिए बुद्धि भी सूक्ष्म करनी होगी। प्रारंभ में हमारी बुद्धि सूक्ष्म ही थी। बाद में हमारी बुद्धि संसार के विषय विकारों, संसार की बातों, संसार के कार्य व्यवहारों तथा विभिन्न वासनाओं की मोटी परत हमारी सूक्ष्म बुद्धि पर चढ़ गई। जब तक हम अपनी बुद्धि से इन मोटी परतों को हटा नहीं लेंगे, हमें उस परमपिता परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होगा। इन परतों को हटाने के लिए विस्तृत ज्ञान की विशेष आवश्यकता है।

जिस तरह एक मृग कस्तूरी की सुगंध में झूमता हुआ उस सुगंध को इधर-उधर पेड़ों में, पत्तों में ढूंढ़ता फिरता रहता है, परंतु वह सुगंध उसे नहीं मिलती। वास्तविकता यह है कि सुगंधि उसकी नाभि में है, परंतु उसे इसका ज्ञान नहीं होता। जब उस मृग को सुगंध का स्रोत मिल जायेगा तो उसकी सारी क्रियाएं रुक जायेगी। अब वह मृग अपनी नासिका को नाभि के साथ लगाकर शांति में बैठ गया। इसी प्रकार परमपिता परमात्मा हमारे साथ है परंतु अज्ञान की मोटी परतें इसमें बाधा बनती है। इसके लिए हमें क्रियाशील बनना होगा, सतत अभ्यास करना होगा, वैराग्य एवं स्वाध्याय को जीवन का अंग बनाना होगा। हमें भी अंर्तमुखी होना होगा। प्रभु का तभी साक्षात्कार हो जायेगा।

यदि पृथ्वी तैयार हो और कुशल कृषक ठीक ढंग से बीज डाल दें तो कोई कारण नहीं कि वह बीज अंकुरित न हो और पुनः उस अंकुरित पौधे को समय पर जल और खाद मिलती रहे तो एक न एक दिन वह पौधा एक विशाल वृक्ष का रूप ले लेता है। और वृक्ष सुंदर पुष्पों और फलों से युक्त हो जाता है। उसी प्रकार जब साधक की अंतः करण रूपी पृथ्वी प्रभु की अनुग्रह रूपी वर्षा से तैयार हो और सच्चा मार्गदर्शक गुरु प्रभु के पवित्र नाम का बीज डाल दे तो वह बीज निश्चित ही अंकुरित होगा और साधक रूपी जल एवं नियम, संयम रूपी खाद से बढ़ता हुआ वह वृक्ष एक न एक दिन भक्ति पुष्पों से अलंकृत होकर ज्ञान रूपी सुंदर फल को धारण करेगा।

इस बात को समझाने के लिए एक दृष्टांत प्रस्तुत है- एक व्यक्ति को एक बंदर पसंद आ गया और वह उसे पकड़ना चाहता था। उसने एक लोटा लिया। उस लोटे में कुछ भुने चने डालकर उसे वृक्ष के नीचे डाल दिए जिस पर बंदर बैठा था और वृक्ष की जड़ के साथ बांध दिया। बंदर नीचे उतरा, उसने देखा कि लोटे में चने हैं। हम सब जानते हैं कि भुने चने बंदर की सबसे बड़ी पसंद है। उसने सोचा कि लोटे को उठाकर पेड़ के ऊपर ले जाता हूं और शनैः शनैः खाता रहूंगा। जब उससे लोटा नहीं उठा (क्योंकि वह वृक्ष की जड़ से बंधा हुआ था) तो उसने सोचा कि एक मुट्ठी भर के तो चलता हूं। उसने अपना हाथ लोटे में डाला और मुट्ठी भर ली। मुट्ठी भरने से उसकी हथेली मोटी हो गई। अब वह हाथ लोटे से बाहर नहीं आ रहा था। अब या तो चने छोड़ दे तब उसका हाथ वापस आ सकता था। परंतु नहीं, अज्ञानी बंदर ने सोचा कि लोटे ने उसका हाथ पकड़ लिया है। बहुत अधिक प्रयत्न करने पर जब उसका हाथ बाहर नहीं निकला तो वह थक हार कर बैठ गया। इतने में वह व्यक्ति आ गया, बंदर ने अपनी ओर इस व्यक्ति को आता देख भी लिया परंतु लोभवश चने नहीं छोड़े और उस व्यक्ति ने उस बंदर को दबोच लिया। इस दृष्टांत का भाव यह है कि हम संसार के कार्य व्यवहार में, परिवार के मोह में, धन एकत्रित करने में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि हमें कुछ नहीं सूझता। यदि वह बंदर लोभ में न आता तो वह बच सकता था। इसी प्रकार हम भी उस बंदर के समान विभिन्न प्रकार के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी चनों में फंसे हुए हैं। परंतु बंधुओ! यह धन हमारे साथ नहीं जायेगा। हां, धर्म कर्म में लगा हुआ धन हमारी पूंजी बनेगा। परंतु यह भवन, गाड़ियां तथा अन्य साजो सम्मान हमारे साथ जाने वाला नहीं है। यदि जायेगा साथ तो यह मन, हमारी आत्मा, हमारा आचार, हमारा व्यवहार, हमारा कर्म। ठीक ही तो कहा है उस प्रभु ने साक्षात्कार के लिए न धन की आवश्यकता है. न रूप की, न यौवन की, न उच्च कुल की, बल्कि प्रभु से मिलने के लिए यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के प्रथम मंत्र को अपने जीवन का अंग बनाना होगा-

ओ३म, ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन् भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

(इदम् सर्वम्) यह सब (यत्किन्च) जो कुछ (जगत्याम्) पृथिवी पर (जगत्) चराचर वस्तु है (ईशा) ईश्वर से (वास्यम्) आच्छादित है (तेन) उसी ईश्वर के (त्यक्तेन) दिये हुए पदार्थों से त्यागपूर्वक (भुञ्जीथा) भोगकर (कस्यस्वित्) किसी के कभी (धनम्) धन का (मा गृधः) लोभ मत कर। अतः परमपिता परमात्मा को सर्वव्यापक मानते हुए जीवन व्यवहार के लिए, जीवन चलाने के लिए वस्तुओं का भोग हम अवश्य करें, उसमें लिप्त न हो, कमल के समान कीचड़ में रहकर अपने आप को इस संसार में लिप्त न करें। प्रभु के भक्ति मार्ग को ज्ञान पूर्वक अपनाते हुए अपने जीवन को सार्थक करें, यही श्रेष्ठ एवं उत्तम मार्ग है। ○○

अनमोल वचन : 'असफलताओं का रिस्क (खतरा) लिए बिना कोई ऊंची वस्तु आज तक कभी किसी को मिली नहीं और न ही मिलेगी इसलिए असफल होने पर घबरायें नहीं।'

वेद प्रार्थना

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को बनाने वाला एक ही ईश्वर है

ज्ञानेश्वरार्य, दर्शनाचार्य

समानो मंत्रः समितिः समानी, समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभि मंत्रये वः, समानेन वो हविषा जुहोमि।।

ऋग्वेद 10/181/3

शब्दार्थ : समानं- एक समान होना चाहिए, मंत्रः- विचार, समिति- सभा, संगति, समानी- एक जैसी होनी चाहिए, समानं मनः- मन भी एक समान होने चाहिए और, सहचित्तम् एषाम्- इन सभा के व्यक्तियों की समझ भी एक जैसी होनी चाहिए, वः- तुम मनुष्यों को, समानं- एक समान ही, मंत्रम्-वेद मंत्र प्रदान करता हूं और, अभिमंत्रये- शुभ आशीर्वाद देता हूं, समानेन वः- तुम सभी मनुष्यों को समान रूप से, हविषा- योग्य वस्तुएं, जुहोमि- बनाकर देता हूं।

भावार्थ : सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को बनाने वाला एक ही ईश्वर है, दो-चार, दस-बीस नहीं। उसी ने हम सभी मनुष्य आदि प्राणियों के भोग के लिए यह पृथ्वी तथा इसमें विद्यमान सभी वस्तुएं बनायी हैं। वह ईश्वर सभी जीवों को सृष्टि के आदि में समान रूस से सूक्ष्म शरीर, मन, बुद्धि, इंद्रियों आदि बनाकर देता है।

उसी ने सभी मनुष्यों को सृष्टि के प्रारंभ में ही चारों वेदों का ज्ञान दिया और इसे सबको पढ़ने का भी अधिकार दिया। सूर्य चन्द्रमा, धरती, समुद्र, नदियां, पहाड़, जंगल, वृक्ष, वनस्पति, अन्न, कन्द, मूल, फल आदि सभी मनुष्यों को बिना पक्षपात के समान रूप से भोगने को दिये हैं। ईश्वर की बनायी हुई इन सभी वस्तुओं को भोगने का सबका समान रूप से अधिकार है।

सभी मनुष्यों को समाज रूप से प्रदत्त यह पृथ्वी तथा इसमें विद्यमान पदार्थों को कुछ स्वार्थी, चतुर, चालाक, बलशाली लोगों ने युद्ध करके झूठ, छल, कपट, हिंसा, भय, आतंक, अन्याय, पक्षपात आदि कुनीति का सहारा लेकर अधिग्रहीत कर लिया। इतना ही नहीं इन्हीं छल, कपट, बल, भय, चालाकी आदि के माध्यम से अज्ञानी, भोले, सरल लोगों को पराधीन बनाया और उनका शोषण भी किया। धन, सम्पत्ति, साधन, सुविधाएं, भोग, ऐश्वर्य सामग्री को अधिकाधिक प्राप्त करने के लिए न जाने क्या-क्या अपराध, कुकर्म किये। उनके इतिहास को पढ़, सुन, जानकर अत्यंत लज्जा आती है, मन में रोष भी उत्पन्न होता है।

इस पृथ्वी के भोग्य पदार्थ, जिस पर सबका समान रूप से अधिकार है, कुछ स्वार्थी लोग येन केन प्रकारेण अधिकाधिक साधनों के स्वामी बनकर अन्यों की अपेक्षा अनेक गुनी भोग्य सामग्री का उपभोग करते हैं। जबकि दूसरी तरफ लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की जीवन ज्ञापन की प्राथमिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं होती है। एक तरफ अत्यंत ऐश्वर्य, भोग-विलास की सामग्री उपलब्ध है, बल्कि अपव्यय हो रहा है।

दूसरी तरफ पेट की आग बुझाने के लिए भोजन, पानी, तन के नंगेपन को दूर करने के लिए वस्त्र तथा सर्दी-गर्मी-वर्षा के बचकर सोने के लिए छोटा सा प्रकोष्ठ भी उपलब्ध नहीं है, कहीं पर तो बच्चों को सुरक्षित, शिष्ट, सभ्य, योग्य नागरिक बनाने के लिए एक व्यक्ति पर लाखों रुपये खर्च होते हैं तो कहीं पर शिक्षा का कोई अवसर भी नहीं मिलता है।

आदिकालीन सत्य सनातन वैदिक धर्म की मान्यता यह है कि पृथ्वी पर सभी को समान रूप से भोग्य सामग्री तभी उपलब्ध हो सकती है जब सारे विश्व के लोग परस्पर मिलकर अपने-अपने विचारों, सिद्धांतों, मान्यताओं को रखें और उनमें जो सत्य हो, श्रेष्ठ हो, सबके लिए हितकारी हो वही स्वीकार करें। जब विश्व में एक अखंडित समस्त भूखंडों का चक्रवर्ती साम्राज्य नहीं होगा, जब तक समस्त विश्व के मनुष्यों को एक संविधान, एक भाषा, एक ईश्वर, एक पूजा पद्धति, एक मंत्र, एक अभिवादन, एक हानि-लाभ, एक शिक्षा प्रणाली, एक न्याय व्यवस्था नहीं होगी, जब तक विश्व के देशों की सीमाएं नहीं मिटेंगी, सभी व्यक्ति एक-दूसरे को अपना भाई-बहिन नहीं मानेंगे तब तक मनुष्य विश्व में पूर्ण शांति, सुख, निर्भीकता, स्वतंत्रता की अनुभूति नहीं कर सकेंगे।

यह संसार और इसमें रहने वाले मनुष्य 1,96,08,53,111 वर्ष पुराने हैं। 5000 वर्ष पूर्व तक सारा विश्व एक ही साम्राज्य था। अब भी हम तुच्छ स्वार्थ की भावनाओं से ऊपर उठकर, विशाल हृदय वाले बनकर परस्पर की घृणा, ऊंच-नीच का, रंग-रूप का, भाषा-भूषा का भेदभाव मिटाकर एक ईश्वर को अपना पिता मानकर सभी भाई-भाई बन जाएं तो विश्व में पुनः स्वर्ग की स्थापना हो सकती है। यह कार्य कठिन अवश्य है परंतु असाध्य नहीं है। ईश्वर करे विश्व के सभी प्रबुद्ध धर्माचार्य, राज्याधिकारी, विद्वान, विशिष्ट व्यक्ति इस ओर प्रयास करें और सारा विश्व एक कुटुम्ब बन जाये और सभी लोग समान रूप से उन्नति करें तथा वे सुख-शांति को प्राप्त करें। यही हमारी हार्दिक भावना है, जिसे ईश्वर पूरी करें।

सभी मनुष्यों को समाज रूप से प्रदत्त यह पृथ्वी तथा इसमें विद्यमान पदार्थों को कुछ स्वार्थी, चतुर, चालाक, बलशाली लोगों ने युद्ध करके झूठ, छल, कपट, हिंसा, भय, आतंक, अन्याय, पक्षपात आदि कुनीति का सहारा लेकर अधिग्रहीत कर लिया। इतना ही नहीं इन्हीं छल, कपट, बल, भय, चालाकी आदि के माध्यम से अज्ञानी, भोले, सरल लोगों को पराधीन बनाया और उनका शोषण भी किया।

धन, सम्पत्ति, साधन, सुविधाएं, भोग, ऐश्वर्य सामग्री को अधिकाधिक प्राप्त करने के लिए न जाने क्या-क्या अपराध, कुकर्म किये। उनके इतिहास को पढ़, सुन, जानकर अत्यंत लज्जा आती है, मन में रोष भी उत्पन्न होता है।

इस पृथ्वी के भोग्य पदार्थ, जिस पर सबका समान रूप से अधिकार है, कुछ स्वार्थी लोग येन केन प्रकारेण अधिकाधिक साधनों के स्वामी मनकर अन्यों की अपेक्षा अनेक गुनी भोग्य सामग्री का उपभोग करते हैं।

लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की जीवन ज्ञापन की प्राथमिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं होती है। एक तरफ अत्यंत ऐश्वर्य, भोग-विलास की सामग्री उपलब्ध है, बल्कि अपव्यय हो रहा है। दूसरी तरफ पेट की आग बुझाने के लिए भोजन, पानी भी उपलब्ध नहीं है।

स्वामी श्री दीक्षानंद सरस्वती पुण्यतिथि पर विशेष

स्वामी दीक्षानन्द का प्रचारक रूप—१९५६ में गुरुकुल प्रभात आश्रम छोड़ने के बाद श्री मनोहरलाल जी ने इनका परिचय **पं० नरेन्द्र जी** मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद से कराया। निजामाबाद आर्यसमाज में इन्हें परखा गया। सोने की पहचान जोहरी ने कर ली और ग्राम-ग्राम, नगर-नगर वेद-प्रचार की दुन्दुभि इनके द्वारा बजती रही। हैदराबाद के आसपास ही नहीं, पं० नरेन्द्र जब तक जीवित रहे आचार्य कृष्ण के अलावा कोई दूसरा उन्हें पसन्द ही नहीं आया और सर्वत्र पत्र लिखते कि प्रचार व उपदेश के लिए आचार्य कृष्ण को ही बुलाएँ। इस प्रकार **आन्ध्र, महाराष्ट्र, राजस्थान, दिल्ली, उ०प्र०** एवं **पंजाब** आदि में वेद-प्रचारार्थ भ्रमण किया। समय ने इन्हें इतना प्रसिद्ध कर दिया कि देश ही नहीं विदेशों में भी **मॉरीशस, दक्षिणी अफ्रीका, डरबन, नैरोवी, केन्या, पूर्वी अफ्रीका** आदि देशों में जाकर **वेद-प्रचार की दुन्दुभि** बजाई।

स्वामी दीक्षानन्द का लेखक रूप—जनमानस को मन्त्र-मुग्ध करने वाले उपदेशों एवं व्याख्याओं से प्रभावित भक्तों के आग्रह पर स्वामी जी ने सर्वप्रथम "**स्वाध्याय-सर्वस्व**" नामक लघु-ग्रन्थ लिखा। इस लघु-ग्रन्थ पर पं० मनोहर विद्यालङ्कार अमर स्वामी, स्वामी विद्यानन्द विदेह की उत्साहजनक सम्मतियों ने स्वामी जी को अपने विचारों को कलमबद्ध करने के लिये प्रोत्साहित किया और "**मृत्युञ्जय सर्वस्व**", "**उपनयन सर्वस्व**", "**अग्निहोत्र सर्वस्व**", "**उपहार सर्वस्व**", "**दो पुटन के बीच**", "**सत्यार्थ कल्पतरु**", "**उद्देश्य सर्वस्व**" आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ।

स्वामी दीक्षानन्द का प्रकाशक रूप—प्रवचन और साहित्य प्रचार का मुख्य आधार हैं, यह सोचकर वैदिक-साहित्य निर्माण में अपने नाम को सार्थक करते हुए स्वयं को दीक्षित कर दिया। उक्त उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए अपने गुरुवर्य के नाम से **समर्पण शोध संस्थान** की स्थापना की।

प्रकाशन की उत्कृष्टता को देखकर अमर शहीद आर्यश्रेष्ठ महाशय राजपाल के सुपुत्र, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली के अधिपति, डी०ए०वी० कॉलेज प्रबन्धकर्तृ समिति के उपप्रधान श्रद्धेय विश्वनाथ जी ने कहा कि **जो कार्य अकेले स्वामी जी कर रहे हैं वैसा तो बड़ी संस्थाएँ एवं सभाएँ जिनके पास साधनों की कोई कमी नहीं है, वे भी नहीं कर रहे हैं। मौलिक साहित्य की रचना और प्रकाशन ही नहीं, अपितु अप्राप्य और लुप्त वैदिक धर्म के मानक ग्रन्थों का पुनरुद्धार उनके पुनर् प्रकाशन द्वारा किया जाने वाला आपका प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है.....इसके लिए आर्य जगत् आपके प्रति सदैव ऋणी रहेगा।** श्री वीरेन्द्र एवं स्वामी आनन्दबोध सरस्वती जी ने भी कुछ इसी प्रकार की टिप्पणियाँ की हैं।

वैदिक सिद्धान्त प्रतिपादक ग्रन्थों का विधिवत् प्रकाशन—समर्पण शोध संस्थान में १९८३ से वैदिक सिद्धान्त प्रतिपादक ग्रन्थों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। **वेदमञ्जरी, ऋग्वेद मण्डल मणि-सूत्र, वैदिक विनय, शतपथ ब्राह्मण का भाष्य, पुरुष सूक्त का विवेचनात्मक अध्ययन, सामवेद संस्कृत भाष्य,** (राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित) इत्यादि ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। स्वामी जी ने एक अन्य प्रकाशन संस्थान '**कुसुमलता आर्य प्रतिष्ठान**' के नाम से स्थापित कर दी। इसके अन्तर्गत **स्वाध्याय संहिता, अग्नि देवता** एवं **इन्द्र देवता का अध्ययन, Anthology of Vedic Hymns, Glimpses of Swami Dayanand, Works of Pt. Gurudatta Vidyarthi, Veda The Right Approach** इत्यादि ग्रन्थ प्रकाशित हुए। समर्पण शोध संस्थान से ५० एवं कुसुमलता आर्य प्रतिष्ठान से १५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। **सत्यं शिवं सुन्दरम्** स्वामी जी की प्रकृति थी और उनके सभी कार्यों में इसके दर्शन होते थे। प्रकाशन के क्षेत्र में यह एक नयी दिशा का सूत्रपात था।

स्वामी दीक्षानन्द का संस्थापक रूप—विद्यार्थी काल से ही स्वामी जी संस्था स्थापित करने में रुचि रखते थे। अत: **भटिण्डा** में उपदेशक विद्यालय की स्थापना कर डाली। पुन: स्वामी समर्पणानन्द जी के आदेश से **गुरुकुल प्रभात आश्रम** को इस प्रकार चलाया जैसा कि संस्थापक ही हों। प्रभात आश्रम के धनुर्विद् देश का सम्मान बढ़ा रहे हैं। **समर्पण शोध संस्थान** साहिबाबाद वैदिक साहित्य के प्रकाशन का विशिष्ट केन्द्र है। **कुसुमलता आर्य प्रतिष्ठान** भी आर्य साहित्य के प्रकाशन का केन्द्र बन गया है।

अपनी परम्परा का एकमात्र व्याख्याकार—आर्य जगत् इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि स्वामी दीक्षानन्द अपने ढङ्ग से, कुछ निराले या पूर्णत: नये ढङ्ग से सोचते, टीका करते थे, व्याख्या करते थे। कई बार तो वे व्याख्यायें वाद-विवाद का विषय भी बन जाती थीं, उनकी आलोचना भी होती थी, क्योंकि वे व्याख्याएँ लीक से हटकर होती थीं। हों भी क्यों नहीं स्वामी जी ऋषि थे, कवि थे, मनीषी थे और क्रान्तदर्शी भी। अत: अपनी **ऊहा** से आर्य जगत् को नित नया देने में लगे रहे। शायद स्वामी जी की इसी बात को देखकर आर्यसमाज शान्ताक्रुज, मुम्बई में हुए सात दिन के प्रवचनों को नियमित रूप से सुनने के बाद **स्वामी सत्यप्रकाश जी** महाराज को कहना पड़ा—"**दीक्षानन्द अपनी परम्परा के अन्तिम व्याख्याता हैं। मुझे लगता है ऐसा कोई पैदा हो जाए तो दूसरी बात है।**" शायद इसीलिये गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने स्वामी जी को **विद्यामार्तण्ड** की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

योग ही क्यों जीवन सार?

21 जून 'योग दिवस' के अवसर पर

स्वामी अमृतानन्द सरस्वती

सभी मनुष्यों के जीवन का सार क्या है? सभी इच्छापूर्वक कभी भी, किसी भी देश में, किसी भी परिस्थिति में, किसी से भी दुख नहीं चाहते हैं, इसके विपरीत सुख की स्वाभाविक इच्छा रखते हैं। सामान्यत: सभी व्यक्ति दुखों को बाहर से ही वस्तु, व्यक्ति, परिस्थितियों से पाते हैं।

ऐसा अनुभव है तथा सुख का भी ऐसा ही अनुभव है। इस कारण समस्त पुरुषार्थ बाहर संसार की ओर रहता है। जीवन व्यतीत हो जाता है पर ऐसा अनुभव नहीं बन पाता है कि जिसे छोड़ना था (दु:ख) को पूर्ण रूप से छोड़ चुका हूं तथा जिसे (सुख) पाना था, प्राप्त कर लिया अब न कुछ छोड़ने योग्य रहा, न पाने योग्य शेष रहा अर्थात् जीवन आसार लगता है। जिस सार के लिए लगा था वह हाथ नहीं लगा।

अनुभवी ऋषियों ने उपरोक्त जीवन सार अर्थात् छोड़ने योग्य जो था उसे छोड़ चुका और कुछ छोड़ने नहीं रहा, पाने योग्य जो था वह पा लिया। अब और कुछ प्राप्त करने योग्य नहीं रहा। यह अनुभव प्राप्ति का एकमात्र उपाय योग बताया है। संसार से तो यह प्राप्त होता नहीं क्योंकि यहां सब कुछ अनित्य, विकारी है। उससे नहीं मिल सकता, मात्र परमेश्वर ऐसा है जो समस्त दुखों से रहित व आनंद स्वरूप है। उसके साक्षात्कार से ही यह सम्भव है। ईश्वर साक्षात्कार की एकमात्र विधि योग है।

योगाचरण ही यथार्थ धर्माचरण, ईश्वर भक्ति का विधान है। धर्माचरण, योगाचरण के बिना सम्भव नहीं है। ईश्वर भक्ति भी बिना योगाचरण के नहीं हो सकती। जो भी ईश्वर भक्त होगा वह धार्मिक होगा ही और जो धार्मिक होगा वह योगाचरण से युक्त अवश्य ही होगा।

योगाचरण है क्या? उसको देखते हैं- योग के आठ अंगों का क्रियात्मक आचरण रूप व्यवहार में लाने का नाम ही योगाचरण है। इससे अज्ञान, अशुद्धि, मल हटकर ज्ञान, शुद्धि, पवित्रता आती है जो बढ़ते-बढ़ते पूर्ण तत्वज्ञान दिव्य नेत्रों (ज्ञान के नेत्रों) को प्राप्त कराकर परमेश्वर के साक्षात्कार को कराने में सामर्थ्य प्रदान करती है, जिससे जीवन सार की प्राप्ति होती है। योग के वे आठ अंग निम्न हैं-

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि। इनके दो भाग हैं- बहिरंग और अंतरंग। बहिरंग में प्रथम पांच अंग है। अंतरंग में अंतिम तीन अंग आते हैं। बहिरंग के प्रथम दो अंग यम व नियम हैं, वे पांच-पांच हैं। अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पांच यम हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्राणिधान ये पांच नियम हैं। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानंद जी उपासना के आठ अंगों में से प्रथम दो अंगों यम और नियम को उपासना अंगों के बीज कहते हैं। वे कहते हैं जो यमों की उपेक्षा करके मात्र नियमों पर ध्यान देता है। वह योग मार्ग से पतित हो जाता है। महर्षि व्यास जिन्होंने पतंजलि के योग दर्शन का भाष्य किया है, लिखते हैं कि यम व नियमों में सबसे मुख्य अहिंसा है। उसी की पुष्टि के लिए अन्य समस्त यम नियमों का विधान है, अर्थात् अहिंसा की पुष्टि के लिए ही उनका विधान है। इसका अर्थ यह हुआ कि परमात्मा साक्षात्कार करने की इच्छा वाला तथा धार्मिक भक्त भी इनका आचरण रूप पालन करने वाला ही होगा और ऐसा ही देखने में भी आता है।

संसार के समस्त धार्मिक, भक्तों, संत, महात्मा, महापुरुष जो हुए थे, हैं या होंगे व सभी धर्म-नियमों के पालन करने वाले ही थे, हैं व रहेंगे जिनके नाम- मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम, योगेश्वर श्रीकृष्ण, महात्मा गौतमबुद्ध, श्रीआद्य शंकराचार्य, गुरुनानक देव, कबीर दास, रामकृष्ण परमहंस, योगीराज अरविंद व महर्षि रमण हैं वे व अन्य जो भी महापुरुष हुए हैं उनके भी जीवन के अवलोकन से भी यह सुस्पष्ट हो जायेगा कि वे भी यम नियमों के पालक ही थे, विरोधी नहीं इसलिए योग ही जीवन सार है।

यमों को महर्षि पतंजलि सार्वभौम कहावत करते हैं। इनके पालन की विधि को बताते हुए लिखते हैं कि इनका पालन सभी प्राणियों के साथ, सभी देशों में, सभी कालों में, सभी परिस्थितियों में करना होता है। इनमें यमों के पालन की विधि इस प्रकार है। हिंसा न करना, न करवाना, न करने वालों का अनुमोदन करना, प्रीति करना, करवाना व करने का उपदेश देना, असत्य न बोलना, न बुलवाना, न अनुमोदन करना, सत्य बोलना, बुलवाना व उसका उपदेश करना, चोरी न करना, न करवाना, न करने वालों का अनुमोदन करना, सत्य व्यवहार रखना, रखवाना व रखने वालों का

योगाचरण ही यथार्थ धर्माचरण, ईश्वर भक्ति का विधान है। धर्माचरण, योगाचरण के बिना सम्भव नहीं है। ईश्वर भक्ति भी बिना योगाचरण के नहीं हो सकती। जो भी ईश्वर भक्त होगा वह धार्मिक होगा ही और जो धार्मिक होगा वह योगाचरण से युक्त अवश्य ही होगा।

योगाचरण है क्या? उसको देखते हैं- योग के आठ अंगो का क्रियात्मक आचरण रूप व्यवहार में लाने का नाम ही योगाचरण है। इससे अज्ञान, अशुद्धि, मल हटकर ज्ञान, शुद्धि, पवित्रता आती है जो बढ़ते-बढ़ते पूर्ण तत्वज्ञान दिव्य नेत्रो (ज्ञान के नेत्रों) को प्राप्त कराकर परमेश्वर के साक्षात्कार को कराने में सामर्थ्य प्रदान करती है, जिससे जीवन सार की प्राप्ति होती है।

उपदेश करना, व्याभिचार न करना, न करवाना, न करने वालों का अनुमोदन करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, करवाना व ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश देना, अनावश्यक व हानिकारक संचय न करना, न करवाना न करने वालों का अनुमोदन करना, आवश्यक हितकारी वस्तुओं, विचारों का ही संचय करना, करवाना व उसका उपदेश देना। ये महापुरुष ऐसा ही करते व कराते थे। उनके मानने वालों को भी इसी के अनकूल आचरण करना चाहिए। यही उनकी भक्ति का यथार्थ स्वरूप होगा।

यही क्रिया रूप आचरण करना योगाभ्यास है, जो भी ऐसा करते हैं यथार्थ में वे योगाभ्यासी है, धार्मिक है, भक्त हैं, संत हैं, महापुरुष हैं इससे विरुद्ध नहीं हो सकते। इसलिए सभी मनुष्यों को योगाभ्यासी होना चाहिए। तभी जीवन से दुख, अशांति व क्लेश दूर होंगे तथा सुख, शांति व आनंद की प्राप्ति संभव है, इसलिए योग ही जीवन का सार है। आज संसार में महापुरुषों, संतों, महात्माओं, भक्तों, धार्मिकों को लोग मानते तो हैं वे महापुरुष कोई भी हो सकते हैं पर उनके गुणों को धारण नहीं करते, क्योंकि उनको मानने का अर्थ है उनकी भक्ति करना और उनकी भक्ति का अर्थ है उनके गुणों को धारण करना अथवा प्रत्येक व्यक्ति को योगाभ्यास होकर अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व विश्व के दुख, अशांति व क्लेशों को हटाना तथा सुख, शांति व आनंद को प्राप्त करना चाहिए, इसलिए योग ही जीवन का सार है।

OO

वैचारिक आन्दोलन, शास्त्रार्थ एवं व्याख्यान

वेदों को छोड़ कर कोई अन्य धर्मग्रन्थ प्रमाण नहीं है - इस सत्य का प्रचार करने के लिए स्वामी जी ने सारे देश का दौरा करना प्रारंभ किया और जहां-जहां वे गये प्राचीन परंपरा के पंडित और विद्वान उनसे हार मानते गये। संस्कृत भाषा का उन्हें अगाध ज्ञान था। संस्कृत में वे धाराप्रवाह बोलते थे। साथ ही वे प्रचंड तार्किक थे। उन्होंने ईसाई और मुस्लिम धर्मग्रन्थों का भली-भांति अध्ययन-मन्थन किया था। अतएव अकेले ही उन्होंने तीन-तीन मोर्चों पर संघर्ष आरंभ कर दिया। दो मोर्चे तो ईसाईयत और इस्लाम के थे किंतु तीसरा मोर्चा सनातनधर्मी हिंदुओं का था, जिनसे जूझने में स्वामी जी को अनेक अपमान, कलंक और कष्ट झेलने पड़े। दयानन्द ने बुद्धिवाद की जो मशाल जलायी थी, उसका कोई जवाब नहीं था। वे जो कुछ कह रहे थे, उसका उत्तर न तो मुसलमान दे सकते थे, न ईसाई, न पुराणों पर पलने वाले हिन्दू पण्डित और विद्वान। हिन्दू नवोत्थान अब पूरे प्रकाश में आ गया था।

स्वामीजी प्रचलित धर्मों में व्याप्त बुराइयों का कड़ा खण्डन करते थे चाहे वह सनातन धर्म हो या इस्लाम हो या ईसाई धर्म हो। अपने महाग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में स्वामीजी ने सभी मतों में व्याप्त बुराइयों का खण्डन किया है। उनके समकालीन सुधारकों से अलग, स्वामीजी का मत शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं था अपितु आर्य समाज ने आर्यावर्त (भारत) के साधारण जनमानस को भी अपनी ओर आकर्षित किया। सन् 1872 ई. में स्वामी जी कलकत्ता पधारे। वहां देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन ने उनका बड़ा सत्कार किया। ब्रह्म समाजियों से उनका विचार-विमर्श भी हुआ किन्तु ईसाईयत से प्रभावित ब्रह्म समाजी विद्वान पुनर्जन्म और वेद की प्रामाणिकता के विषय में स्वामी से एकमत नहीं हो सके। कहते हैं कलकत्ते में ही केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी को यह सलाह दे डाली कि यदि आप संस्कृत छोड़कर आर्यभाषा (हिन्दी) में बोलना आरम्भ करें, तो देश का असीम उपकार हो सकता है। तभी से स्वामी जी के व्याख्यानों की भाषा आर्यभाषा (हिन्दी) हो गयी और आर्यभाषी (हिन्दी) प्रान्तों में उन्हे अगणित अनुयायी मिलने लगे। कलकत्ते से स्वामी जी मुम्बई पधारे और वहीं 10 अप्रैल 1875 ई. को उन्होने 'आर्य समाज' की स्थापना की।

समाचार दर्पण

कार्यक्रम आयोजित :

स्वामी इन्द्रवेश स्मृति सम्मान समारोह व युवा संकल्प कार्यक्रम का भव्य आयोजन सम्पन्न (11वीं पुण्यतिथि पर)। अनेक संन्यासी, वैदिक विद्वान, कर्मठ कार्यकर्ता, यज्ञनोय देशकों का सम्मान किया गया, टिटोली, रोहतक में।

केंद्रीय आर्य युवक परिषद के तत्वावधान में 18 जून को अमेटी इंटरनेशनल स्कूल नोएडा में 300 युवकों का चरित्र निर्माण शिविर का भव्य समापन समारोह डॉ. अशोक चौहान चेयरमैन अमेटी शिक्षण संस्थान एवं डॉ. श्रीमती अमिता चौहान चेयरपरसन अमेटी के सानिध्य में हुआ। अनेक संस्थाओं व सभाओं के पदाधिकारियों ने भाग लेकर कार्यक्रम को सफल बनाया। उद्घाटन भाषण आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार द्वारा किया गया।

आगामी कार्यक्रम :

आत्मशुद्धि आश्रम, बहादुरगढ़ में 30 जून से 2 जुलाई तक नि:शुल्क सरल आध्यात्मिक शिविर, स्वामी धर्ममुनि जी के सानिध्य में व स्वामी विवेकानंद परिब्राजक, दर्शनाचार्य (रोजड़)।

भव्य उद्घाटन समारोह महात्मा प्रभु आश्रित देवालय (यज्ञशाला), आचार्य निवास एवं रोटरी क्लब नोएडा द्वारा निर्मित छात्रावास का दिनांक 9 जुलाई स्थान आर्ष कन्या गुरुकुल, वेद धाम, सोरखा नोएडा।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा 18वां वैवाहिक परिचय सम्मेलन 9 जुलाई स्थान आर्य समाज बाहरी रिंग रोड, विकासपुरी, नई दिल्ली। ■ **सम्पर्क : श्री एस.पी. सिंह, 9540040324**

'विश्ववारा संस्कृति' के नियम व सविनय निवेदन

1. यदि 'विश्ववारा संस्कृति' दिनांक 15 तक नहीं पहुंचती है तो आप प्रधान संपादक के नाम पत्र डालें। पत्र मिलते ही 'विश्ववारा संस्कृति' पुनः भेज दी जायेगी।

2. वार्षिक शुल्क तथा आजीवन शुल्क मनीआर्डर द्वारा आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा के नाम भेजें। वीपी रजिस्ट्री द्वारा नहीं भेजा जायेगा।

3. लेख संपादक 'विश्ववारा संस्कृति' के नाम भेजें, लेख छोटे, सरल, संक्षिप्त होने चाहिए तथा स्पष्ट, शुद्ध एवं सुंदर लेख कागज के एक ओर लिखे होने चाहिए।

4. 'विश्ववारा संस्कृति' में विज्ञापन भी दिये जाते हैं, परंतु विज्ञापन शुद्ध एवं वास्तविक वस्तु का ही दिया जायेगा।

5. यह 'विश्ववारा संस्कृति' पत्रिका समाज-सुधार की दृष्टि से मानव कल्याणार्थ निकाली जाती है। इसमें आपको धर्म, यज्ञ कर्म, समाज सुधार, देश व समाज की स्थिति, ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य, योगासन, सदाचार, संस्कार, नैतिकता, वैदिक विचार, शिक्षा आदि एवं अन्य ऐसे विषयों पर लेख पढ़ने को मिलेंगे।

6. 'विश्ववारा संस्कृति' के दस ग्राहक बनाने वाले सज्जन को एक वर्ष तक निःशुल्क 'विश्ववारा संस्कृति' भेजी जायेगी तथा पचास ग्राहक बनाने वाले सज्जन को दो वर्ष निःशुल्क पत्रिका भेजी जायेगी तथा उसका फोटो सहित जीवन-परिचय 'विश्ववारा संस्कृति' में निकाला जायेगा।

7. अन्य पत्र-पत्रिकाओं में पहले छपा हुआ लेख 'विश्ववारा संस्कृति' में नहीं छापा जायेगा।

8. अनाधिकृत रूप से लिए लेख, रचना, कविता के लिए प्रेषक ही उत्तरदायी होंगे।

आर्य कै. अशोक गुलाटी
प्रबंध संपादक

'विश्ववारा संस्कृति'
आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, उप्र
संपर्क सूत्र : 0120-2505731,
9871798221, 9555779571
ई-मेल : info.aryasamajnoida33@gmail.com

दयानंद सरस्वती

स्वामी जी के जीवन में ऐसी बहुत सी घटनाएं हुईं, जिन्होंने उन्हें हिन्दू धर्म की पारम्परिक मान्यताओं और ईश्वर के बारे में गंभीर प्रश्न पूछने के लिए विवश कर दिया। एक बार शिवरात्रि की घटना है। तब वे बालक ही थे। शिवरात्रि के उस दिन उनका पूरा परिवार रात्रि जागरण के लिए एक मन्दिर में ही रुका हुआ था। सारे परिवार के सो जाने के पश्चात् भी वे जागते रहे कि भगवान शिव आयेंगे और प्रसाद ग्रहण करेंगे। उन्होंने देखा कि शिवजी के लिए रखे भोग को चूहे खा रहे हैं। यह देख कर वे बहुत आश्चर्यचकित हुए और सोचने लगे कि जो ईश्वर स्वयं को चढ़ाये गये प्रसाद की रक्षा नहीं कर सकता वह मानवता की रक्षा क्या करेगा? इस बात पर उन्होंने अपने पिता से बहस की और तर्क दिया कि हमें ऐसे असहाय ईश्वर की उपासना नहीं करनी चाहिए।

अपनी छोटी बहन और चाचा की हैजे के कारण हुई मृत्यु से वे जीवन-मरण के अर्थ पर गहराई से सोचने लगे और ऐसे प्रश्न करने लगे जिससे उनके माता पिता चिन्तित रहने लगे। तब उनके माता-पिता ने उनका विवाह किशोरावस्था के प्रारम्भ में ही करने का निर्णय किया। लेकिन बालक मूलशंकर ने निश्चय किया कि विवाह उनके लिए नहीं बना है और वे 1846 मे सत्य की खोज मे निकल पड़े। महर्षि दयानन्द के हृदय में आदर्शवाद की उच्च भावना, यथार्थवादी मार्ग अपनाने की सहज प्रवृत्ति, मातृभूमि की नियति को नई दिशा देने का अदम्य उत्साह, धार्मिक-सामाजिक-आर्थिक व राजनैतिक दृष्टि से युगानुकूल चिन्तन करने की तीव्र इच्छा तथा आर्यावर्तीय जनता में गौरवमय अतीत के प्रति निष्ठा जगाने की भावना थी। उन्होंने किसी के विरोध तथा निन्दा करने की परवाह किये बिना आर्यावर्त के हिन्दू समाज का कायाकल्प करना अपना ध्येय बना लिया था।

विश्ववारा संस्कृति

- सभी धार्मिक सामाजिक पत्रों की अपेक्षा अधिक संख्या में प्रकाशित होने वाली पत्रिका।
- वर्ष में 12 अंक प्राप्त करें।
- 'विश्ववारा संस्कृति' का वार्षिक सदस्यता शुल्क 250 रुपया है। और आजीवन सदस्यता शुल्क 2500 रुपया है।
- 'विश्ववारा संस्कृति' का विदेश में वार्षिक सदस्यता शुल्क 3100 रुपया है।
- लेखक अपने विचार, लेख, कविता आदि प्रकाशन सामग्री प्रत्येक मास की 2-4 तारीख तक भेज दिया करें।
- जिस मास से शुल्क भेजेंगे तभी से सदस्यता प्रारम्भ होगी।
- नमूना कॉपी के लिए रु. 20 का धन-आदेश द्वारा अग्रिम भेजें।
- प्रत्येक पत्र व्यवहार में अपनी सदस्यता संख्या अवश्य लिखें और उत्तर चाहने वाले व्यक्ति दोहरा कार्ड या टिकट भेजें।
- प्रत्येक पत्र-व्यवहार में अपना पता भी हिन्दी में साफ-साफ लिखा करें।
- आपके सुझाव अपेक्षित हैं।

■ **प्रबंध संपादक**

'विश्ववारा संस्कृति' : सदस्यता आवेदन पत्र

नाम : .....

आयु : ..... दिनांक : .....

पता : .....

.....

शहर : ..... राज्य : ..... पिन कोड : .....

फोन : ..... मोबाइल : ..... ई-मेल .....

नगद/चैक/मनी आर्डर/डीडी संख्या : .....

संरक्षक/आजीवन/पंच वर्षीय/वार्षिक सदस्यता हेतु संलग्न है।

चैक-मनी आर्डर 'आर्य समाज' नोएडा के नाम भिजवाएं अथवा आप लोग सीधे ही 'युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया' नोएडा, सेक्टर-33 में खाता संख्या : 1483010100182, IFSC-UTB10SCN560 में जमा कराकर रसीद की प्रतिलिपि निम्न पते पर भेजें-

प्रबंध संपादक

'विश्ववारा संस्कृति'

आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, (उप्र)

संपर्क सूत्र : 0120-2505731, 9871798221, 9555779591

ई-मेल : info.aryasamajnoida33@gmail.com

अमेटी शिक्षण संस्थान में आयोजित आर्य युवक चरित्र निर्माण शिविर में भाग लेते आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार एवं अन्य महानुभाव।

अमेटी शिक्षण संस्थान के चेयरमैन डॉ. अशोक चौहान एवं डॉ. अमिता चौहान के साथ आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार।

पर्यावरण दिवस के उपलक्ष्य में सेक्टर-20 नोएडा के पार्क में पर्यावरण शुद्धि यज्ञ करते हुए आर्यसमाज नोएडा के आर्य।

निपमैन कंपनी के अधिकारियों के साथ चेन्नई में आर्ष गुरुकुल नोएडा के आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार।

आर्यवीर दल शिविर के उद्घाटन समारोह के अवसर पर 'विश्ववारा संस्कृति' पत्रिका का अवलोकन करते हुए महानुभाव।

जी न्यूज पर आर्ष गुरुकुल नोएडा

विश्ववारा संस्कृति

आर्य समाज, बी-69, सैक्टर-33, नोएडा (उ.प्र.) दूरभाष : 0120-2505731